Con. 4. VIII-6.49
320

अंक 8
संख्या 6

सोमवार
23 मई
सन् 1949 ई.

सत्यमेव जयते

भारतीय संविधान-सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का प्रारूप..... 327-369

[नवीन अनुच्छेद 67-क, अनुच्छेद 100, 101, 102 तथा
नवीन अनुच्छेद 102-क पर विचार]

भारतीय संविधान-सभा

सोमवार, 23 मई सन् 1949 ई.

अध्यक्ष (माननीय डा. राजेन्द्र प्रसाद) की अध्यक्षता में कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में दोपहर बाद पांच बजे संविधान सभा की बैठक हुई।

संविधान का प्रारूप—(*जारी*)

अनुच्छेद 67क—(*जारी*)

***अध्यक्ष:** हम अनुच्छेद 67-क को लेंगे जिसको उस दिन लिया गया था और स्थगित कर दिया था।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** (बम्बई : जनरल): श्रीमान्, मैं सभा से इस अनुच्छेद को वापस करने की अनुमति के लिये प्रस्ताव करता हूं।

***अध्यक्ष:** मैं समझता हूं कि उन्होंने पेश ही नहीं किया था अत: वापस करने का प्रश्न ही नहीं है।

***मि. बी. पोकर साहिब** (मद्रास : मुस्लिम): नहीं, उसको ले लिया गया था और वह सभा के अधिकार में है। अत: माननीय सदस्य को उसे वापस लेने के पक्ष में तर्क प्रस्तुत करना चाहिए।

***अध्यक्ष:** ठीक है, मुझे खेद है कि मुझसे गलती हुई है। इस अनुच्छेद को वापस करने के पक्ष में माननीय डा. अम्बेडकर अपने तर्क प्रस्तुत कर सकते हैं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मेरी ओर से यह तर्क है कि जैसा कि मैंने गत अवसर पर कहा था संसद में कुछ व्यक्तियों के नाम निर्देशन के लिये हमने एक उपबंध रखा था। मूल प्रस्थापना पन्द्रह व्यक्तियों के नाम निर्देशित करने के लिये थी। बाद में यह निश्चित किया गया कि इन पन्द्रह व्यक्तियों को दो श्रेणियों में विभाजित किया जाये अर्थात् बारह साहित्य, विज्ञान, कला, सामाजिक सेवा इत्यादि का प्रतिनिधित्व करते हुए और किसी विशेष विधेयक के सम्बन्ध में संसद के सदनों को सहायता तथा मंत्रणा देने की तीन व्यक्तियों के नामनिर्देशन के लिये एक और उपबंध बनाया जाये। श्रीमान्, मैं समझता हूं कि जो उपबंध पहले से ही अनुच्छेद 67 में दिया हुआ है और जो राष्ट्रपति को संसद में बारह व्यक्तियों के नाम निर्देशित करने की अनुज्ञा देता है वह इस प्रयोजन की पूर्ति कर देता है जो नये अनुच्छेद 67-क में निहित है। यदि अनुच्छेद 67-क को विधि के रूप में पारित कर दिया जाता है तो नाम निर्देशित व्यक्तियों द्वारा जो सेवायें की जायेंगी वे उन व्यक्तियों द्वारा भी की आयेंगी जिनके अनुच्छेद 67 के अन्तर्गत नाम निर्देशित होंगे। अत: अनुच्छेद 67-क के अंतर्गत नामनिर्देशन केवल उसी नामनिर्देशन प्रणाली की पुनरावृत्ति

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

है जो अनुच्छेद 67 के अन्तर्गत आ जाती है। इसके साथ-साथ यह भी अनुभव किया जाता है कि एक स्वतंत्र संसद में जो पूर्णतया सम्पूर्ण सम्पन्न तथा जनता का प्रतीक है, उसमें बहुत अधिक नामनिर्देशन नहीं होना चाहिये। बारह तो हैं ही, एंग्लो-इंडियन्स के भी कुछ नामनिर्देशन होंगे तो यह अनुभव किया गया कि नामनिर्देशन की इस संख्या में परिवृद्धि करना संसद के लोकप्रिय तथा प्रतिनिध्यात्मक रूप के लिये अपमानजनक होगा। इसी कारण मैं इस अनुच्छेद 67-क को वापस लेना चाहता हूं।

सभा की अनुमति से अनुच्छेद 67-क वापस किया गया।

अनुच्छेद 92 से 99 तक के सम्बन्ध में कथन

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि अब हम अनुच्छेद 100 से प्रारम्भ करें।

***अध्यक्ष:** मैं यह मान लेता हूं कि 92 से 99 अनुच्छेदों पर अभी विचार-विमर्श स्थगित किया जाये जिससे कि वित्त तथा वित्त-विधेयकों से सम्बन्धित कारोबार पर और आगे विचार किया जा सके।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** जी हां, स्थिति ऐसी ही है। जब अनुच्छेद 90 पर वाद-विवाद हो रहा था मैंने सुझाव रखा था कि वाद-विवाद समाप्त न किया जाये और उस पर मत न लिया जाये क्योंकि अन्तिम क्षणों में मैंने उस अनुच्छेद में एक कमी मालूम की जिसको दूर करना मैंने आवश्यक समझा। यदि वह कमी दूर की जाती है तो इस अनुच्छेद के कारण 96 से 99 अनुच्छेदों पर भी पुनर्विचार अपेक्षित है। अनुच्छेद 91 को हम पारित कर चुके हैं। 92 से 99 अनुच्छेदों पर और विचार करना अपेक्षित है इसलिये मैं चाहता हूं कि अभी इन अनुच्छेदों को स्थगित रखा जाये। पर हम अनुच्छेद 100 से प्रारम्भ कर सकते हैं।

सेठ गोविन्ददास (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): सभापति जी, आर्टिकिल 99 से हमारी भाषा का सम्बन्ध है। इसलिये मैं यह जानना चाहता हूं कि अगर आर्टिकिल 92 से 99 पर अभी विचार नहीं किया जायेगा तो फिर धारा 99 पर कब विचार किया जायेगा, क्योंकि जैसा मैंने उस दिन कहा था हमको अपना विधान अपनी भाषा में भी पास करना है और मुझे यह पता लगा है कि जो कमेटी आपने बनाई थी, वह कमेटी आर्टिकिल 50 तक अनुवाद कर चुकी है और वे आर्टिकिल जो हम पास कर चुके हैं इस समय भी आ सकते हैं तो मैं यह जानना चाहता हूं कि यदि आप आर्टिकिल 99 को आगे बढ़ा रहे हैं तो उसे कब तक के लिये बढ़ा रहे हैं और क्या भाषा विषयक निर्णय न होने पर भी कमेटी ने जिन धाराओं का अनुवाद कर लिया है उनको उपस्थित किया जा सकेगा और उन पर विचार किया जा सकेगा।

अध्यक्ष: अभी तक मेरे पास कमेटी की कोई रिपोर्ट नहीं आई है और मुझे मालूम नहीं है कि वह कहां तक गये हैं। मगर कम से कम जहां तक हम पहुंच चुके हैं वहां तक उसका अनुवाद तैयार हो जाये तभी हम उसको देख सकते हैं। इसलिये अगर आज हम इसको न लें तो उसमें कोई दिक्कत नहीं होगी।

सेठ गोविन्ददास: मेरा सवाल तो बाकी रह गया। मैं यह जानना चाहता हूं कि आर्टिकिल 99 कब तक के लिये मुल्तवी किया जायेगा?

अध्यक्ष: मैं ठीक नहीं कह सकता हूं मगर उसे आगे किसी दिन लिया जायेगा।

सेठ गोविन्ददास: तो क्या मैं इस तरह समझूं कि जितने आर्टिकिल हम यहां पर पास कर चुकेंगे उतने आर्टिकिल का अनुवाद हो जाने पर और वह आपके पास पहुंचने पर और आर्टिकिल 99 न लेने पर भी हम उन धाराओं पर विचार कर सकेंगे?

अध्यक्ष: मैं आज कुछ नहीं कह सकता। मुझे उन पर विचार करके समय निश्चित करना होगा। हो सकता है कि आर्टिकिल 99 को कुछ दिन के लिये मुल्तवी रखना पड़े।

अब हम अनुच्छेद 100 से प्रारम्भ करेंगे।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): क्या मैं आपके सूचनार्थ इस विषय का एक और पहलू प्रस्तुत करूं वह यह है कि जब हम यकायक अन्य कुछ अनुच्छेदों को ले लेते हैं और वे अनुच्छेद यदि ऐसे होते हैं जिन पर हम पूरी तरह से तैयार नहीं हैं तो हमें अकस्मात् उन पर विचार करना पड़ता है। मैं निवेदन करता हूं कि यदि आज नहीं तो भविष्य में आप इस विषय पर विचार करेंगे।

***अध्यक्ष:** सदस्यों के समक्ष यह संविधान एक बहुत अरसे से है और मैं समझता हूं कि सदस्यों ने प्रारूप का अध्ययन कर लिया होगा। संशोधनों की संख्या से भी यही विदित होता है कि समस्त सदस्यों ने सम्पूर्ण संविधान पर पूर्ण विवरण सहित विचार कर लिया है। अत: यदि कोई ऐसा अनुच्छेद ले लिया जाता है जो उस अनुच्छेद के बाद नहीं आता है जिस पर हम विचार कर चुके हैं तो किसी व्यक्ति को भी अकस्मात् विचार नहीं करना पड़ता। परन्तु इस सम्बन्ध में हम सदस्यों के विचारों पर ध्यान देंगे और मैं नहीं समझता हूं कि यदि हम अनुच्छेद 100 तथा उसके अनुवर्त्ती अनुच्छेदों को ले लेते हैं कोई बड़ी असुविधा होगी।

अनुच्छेद 100

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1784, जिसकी सूचना श्री हिम्मतसिंह के. महेश्वरी ने दी है, वास्तव में संशोधन नहीं है। जहां तक इसका सम्बन्ध है वह निषेधात्मक संशोधन है।

संशोधन संख्या 1785 श्री नजीरुद्दीन अहमद का है। वह शाब्दिक संशोधन है। अत: हम इसे भी छोड़ सकते हैं।

प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 100 विधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 100 विधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 101

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 101।

***श्री एच.वी. कामत:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 101 के खण्ड (1) में 'called in question' शब्दों के पश्चात् 'in any court' शब्द प्रविष्ट किये जाये।''

मैं केवल इस अनुच्छेद में उस बात को स्पष्ट करना चाहता हूं जिसके प्रति मुझे विश्वास है कि वह प्रकट नहीं की गई है और मैं समझता हूं कि किसी कार्यवाही की मान्यता पर किसी न्यायालय में प्रश्न नहीं किया जायेगा। अत: इस बात को बिल्कुल स्पष्ट तथा व्यक्त करने के लिये मैं इन शब्दों को प्रविष्ट करने का सुझाव रखता हूं।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 101 के खण्ड (2) में 'or other member' शब्दों के स्थान में 'and no member' शब्द रखे जायें।''

इस अनुच्छेद में खण्ड (2) इस प्रकार है:

''न कोई पदाधिकारी अथवा संसद का अन्य सदस्य...'' इत्यादि इत्यादि।

वास्तव में 'न कोई पदाधिकारी अथवा संसद का अन्य सदस्य' से यह भाव प्रकट होता है कि एक पदाधिकारी सदन का सदस्य है। 'अन्य' शब्द पूर्णतया भ्रमोत्पादक है। उस से असत्य भावना प्रकट होती है। यदि संशोधन स्वीकार कर लिया जाता है तो यह पद इस प्रकार का होगा:

'न कोई पदाधिकारी और न कोई ससंद का सदस्य...' इत्यादि इत्यादि।

वस्तुत: मैं एक पदाधिकारी और सदस्य में अन्तर करना चाहता हूं। इस संशोधन के पक्ष में यही एक साधारण तर्क है। अनुवर्त्ती संशोधन को मैं पेश नहीं करना चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** मैं समझता हूं कि वह एक अनावश्यक संशोधन प्रतीत होता है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रास : जनरल): मैं समझता हूं कि दोनों संशोधन गलत हैं। एक के सम्बन्ध में तो किसी न्यायालय में कार्यवाहियों पर प्रश्न नहीं किया जा सकता है और दूसरे के सम्बन्ध में अध्यक्ष और उपाध्यक्ष को सही अर्थ में संसद के पदाधिकारी कहा जा सकता है। अत: उनको भी मुक्त रखना चाहिये। मैं समझता हूं कि इस खण्ड का यही अभिप्राय है।

***अध्यक्ष:** क्या उसके अन्तर्गत अन्य पदाधिकारी भी आ जाते हैं?

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** 'ससंद का पदाधिकारी' इसके अन्तर्गत अध्यक्ष अथवा संसद प्रयोजनार्थ अध्यक्ष द्वारा नियुक्त अन्य पदाधिकारी आ जाते हैं। इसको व्यापक अर्थ के लिये रखा गया न कि संकुचित अर्थ के लिये।

***अध्यक्ष:** क्या 'न कोई सदस्य' के अन्तर्गत अध्यक्ष भी आ जायेगा?

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** अध्यक्ष भी सदस्य होगा। इसीलिये मैं समझता हूं कि 'अन्य सदस्य' शब्दों का प्रयोग किया गया है।

***अध्यक्ष:** मान लीजिये यदि वह 'न कोई पदाधिकारी' तथा 'न कोई सदस्य' हो तो उसके अन्तर्गत अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष आ जायेंगे।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** आ सकते हैं। मैं नहीं समझता हूं कि इसमें कोई बड़ी हानि नहीं है।

***अध्यक्ष:** कदाचित् यह आशय हो कि अन्य पदाधिकारियों की रक्षा की जाये उदाहरण के लिये मार्शल।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** पदाधिकारियों के अन्तर्गत समस्त पदाधिकारी आ जाते हैं। प्रश्न यह है कि क्या 'सदस्य' वहां रहना चाहिये। यदि उसको जैसा है वैसा ही रहने दिया जाये तो कोई विशेष कठिनाई नहीं होगी। जहां तक प्रथम भाग का सम्बन्ध है मैं नहीं समझता हूं कि हम ''और न कोई सदस्य'' शब्द रखकर उसे संकुचित करें।

***श्री के.एम. मुंशी** (बम्बई : जनरल): श्रीमान्, आपके समक्ष जो ध्वनिवर्द्धक यंत्र है उसमें कोई खराबी है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, श्री कामत के संशोधन को मैं नहीं समझता हूं कि वह आवश्यक है क्योंकि न्यायालय को छोड़कर और कहां विधिवत् संसद की कार्यवाहियों पर प्रश्न किया जा सकता है? अत: केवल न्यायालय ही ऐसे स्थान हैं जहां संसद की कार्यवाहियों पर विधिवत् प्रश्न किया जा सकता है और विधि सम्बन्धी मंजूरी प्राप्त की जा सकती है। अत: अपने संशोधन में श्री कामत जिन शब्दों का उल्लेख करते हैं। वे अनावश्यक हैं।

मेरे बताये हुए इस कारण से जिस फड़ में इन कार्यवाहियों पर विधिवत् प्रश्न किया जा सकता है और किसी के भी राष्ट्रपति अथवा अध्यक्ष अथवा अन्य कोई पदाधिकारी अथवा सदस्य के विरुद्ध यदि कोई विधि सम्बन्धी साहाय्य प्राप्त की जा सकती है, वह फड़ न्यायालय ही है। श्री कामत यह देखेंगे कि हाशिये की टिप्पणी इस बात को स्पष्ट कर देती है।

मेरे मित्र श्री नजीरुद्दीन अहमद द्वारा पेश किये गये संशोधन के सम्बन्ध में तो उन्होंने यह नहीं समझा कि उपखंड (2) में महत्त्वपूर्ण शब्द 'जिनमें शक्तियां निहित हैं।''

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** व्यवस्था बनाये रखने के लिये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** 'न कोई पदाधिकारी अथवा संसद का अन्य सदस्य जिसमें शक्तियां निहित है' वे व्यक्ति हैं जिनकी उपखंड (2) के द्वारा रक्षा की जाती है। अध्यक्ष पदाधिकारी भी है और सदस्य भी। उसे तो कोई शक्ति सौंपी न जायेगी। संविधान उसको शक्ति सौंपता है। अतः इस तथ्य पर विचार करते हुए कि केवल 'अन्य सदस्य' ही अर्थात् यथास्थिति अध्यक्ष अथवा उपाध्यक्ष को छोड़कर सदस्य ही ऐसा है जिसे रक्षित होने की आवश्यकता है। इस कारण 'अन्य' शब्द महत्त्वपूर्ण हैं।

***अध्यक्षः** 'अथवा व्यवस्था बनाये रखने के लिये' इन शब्दों का क्या प्रभाव है?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मान लीजिये सदन में कोई झगड़ा हो जाये। मैं इस रूप में कहना तो नहीं चाहता हूं। परन्तु मान लीजिये सदन में कोई झगड़ा हो जाये और किसी सदस्य को हटाने के लिये किसी पदाधिकारी को न पाकर अध्यक्ष किसी अन्य सदस्य से जो उपस्थित है उस सदस्य को हटाने के लिये निवेदन करता है जो झगड़ा कर रहा है। तो यह विशिष्ट सदस्य वह सदस्य है जिसमें अध्यक्ष द्वारा यह प्राधिकार निहित कर दिया जाता है और वह 'अन्य सदस्य' के अन्तर्गत आयेगा।

***अध्यक्षः** 'अथवा अन्य कोई पदाधिकारी जो सदन का सदस्य नहीं है' क्या वह इसके अन्तर्गत आता है?

***माानीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** 'अधिकारी' तो वहां रहेगा ही।

***श्री एच.वी. कामतः** क्या मैं कुछ स्पष्टीकरण के लिये निवेदन कर सकता हूं? मेरे संशोधन का उल्लेख करते हुए श्री सन्तानम् ने कहा था कि किसी संशोधन की मान्यता पर केवल न्यायालय में ही प्रश्न नहीं किया जा सकता है वरन् विधान-मण्डल में भी किया जा सकता है। क्या डा. अम्बेडकर उनसे सहमत हैं?

***माननीय डा. बी.आर अम्बेडकरः** मैंने जो व्याख्या की है मैं उसके प्रति उत्तरदायी हूं।

***श्री एच.वी. कामतः** डा. अम्बेडकर द्वारा उल्लिखित दूसरी बात के सम्बन्ध में कि हाशिये का उपशीर्षक स्पष्ट है क्या मैं यह संकेत कर सकता हूं कि दूसरे फड़ में अर्थात् विधान-सभा में मुझसे यह कहा गया था कि हाशिये के शीर्षकों का विधान से कोई सम्बन्ध नहीं है और अनुच्छेद अथवा धाराओं को बिना हाशियों के शीर्षकों के उल्लेख के लिए लिया जाता है। यदि ऐसा है और यदि आप हाशिये के शीर्षक और अनुच्छेद को साथ-साथ नहीं पढ़ेंगे तो मेरी समझ में तो स्पष्ट अर्थ नहीं आता है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** इस विषय पर दो विचारधारायें हैं एक विचारधारा यह है कि हाशिये की टिप्पणी धारा का अंग नहीं है, दूसरी विचारधारा यह है कि हाशिये

की टिप्पणी धारा का अंग है। उदाहरणार्थ श्री मावलंकर ने जब वे बम्बई में थे इस विचारधारा को माना कि हाशिये की टिप्पणी धारा का अंग नहीं है, परन्तु बम्बई सभा के वर्तमान अध्यक्ष ने अभी-अभी यह कहा था कि हाशिये की टिप्पणी धारा का प्रमुख अंग है क्योंकि वह धारा के अर्थ की कुंजी है।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 101 के खंड (1) में 'called in question' शब्दों के पश्चात् 'in any court' शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 101 के खंड (2) में 'or other member' शब्दों के स्थान में 'and no member' शब्द रखे जायें।''

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 101 विधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 101 विधान में प्रविष्ट किया गया।

भाग 5–अध्याय 3

***अध्यक्षः** भाग 5–अध्याय 3।

(संशोधन संख्या 1789 और 1790 पेश नहीं किये गये।)

***प्रो. के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि भाग 5 के अध्याय 3 के शीर्षक में 'Legislative' शब्द के स्थान में 'extraordinary' शब्द रखा जाये।''

यह शीर्षक फिर 'राष्ट्रपति की असामान्य शक्तियां हो जायेगा।

मैं विशेषकर इस पहलू की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं कि जो कोई शक्ति राज्य के मुखिया अथवा मुख्य कार्यपालिका को हो वह कार्यपालिका शक्ति के रूप में होनी चाहिये। यदि इस अनुच्छेद के अन्तर्गत कोई अन्य शक्तियां रखने का प्रस्ताव किया जाता है तो यह स्पष्ट कर देना चाहिये कि वे शक्तियां असामान्य है अर्थात् उनका प्रयोग सामान्यकाल अथवा सामान्य परिस्थितियों में नहीं किया जायेगा। यह सत्य है कि असामान्य परिस्थितियों में जैसे कि आपात की दशा में असामान्य शक्तियों का प्रयोग आवश्यक तथा

[प्रो. के.टी. शाह]

न्याययुक्त होगा। अतः मैं समझता हूं कि स्वयं शीर्षक में इस बात को साफ कर देना आवश्यक है कि निश्चित रूप से यह असामान्य शक्ति है जो हमारे द्वारा विधायी शक्ति न कही जाने पर भी विधान का रूप ग्रहण कर लेती है। विधायी शक्ति तो कार्यपालिका-प्रमुख को होनी ही न चाहिये। नहीं तो वह कार्यपालिका आज्ञप्ति का रूप तक ग्रहण कर लेगी अथवा कोई ऐसा रूप ग्रहण कर लेगी जो उन परिस्थतियों में उचित प्रतीत हो। जिस बात पर मैं जोर देना चाहता हूं वह यह है कि यहां किसी उल्लेख द्वारा हमें यह उपलक्षित, प्रतिपादित अथवा सूचित नहीं करना चाहिये कि राष्ट्रपति की असामान्य शक्तियों के अतिरिक्त और भी विधि बनाने की शक्तियां हैं। मैं समझता हूं कि यह विषय पर्याप्त रूप से स्पष्ट कर दिया गया है और सदन को मान्य होगा।

***मि. तजम्मुल हुसैन** (बिहार : मुस्लिम): श्रीमान्, अध्याय 3 राष्ट्रपति की विधायी शक्तियों के सम्बन्ध में है। प्रो. शाह चाहते हैं कि 'विधायी' शब्द के स्थान में 'असामान्य' शब्द का प्रयोग किया जाये। अनुच्छेद 102 इस बात को स्पष्ट कर देता है कि यह राष्ट्रपति की असामान्य शक्ति है। वह असामान्य होने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, परन्तु फिर भी वह विधायी शक्ति ही है। इस कारण मैं इस संशोधन का विरोध करता हूं।

***अध्यक्षः** मैं नहीं समझता हूं कि और अधिक विचार-विमर्श आवश्यक है। प्रस्ताव यह है:

> ''कि भाग 5 के अध्याय 3 के शीर्षक में 'legislative' शब्द के स्थान में 'extraordinary' शब्द रखा जाये।''

संशोधन अस्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 102

***अध्यक्षः** अब हम मूल अनुच्छेद पर आते हैं सर्वप्रथम श्री दामोदरस्वरूप सेठ का संशोधन संख्या 1792 है।

(यह संशोधन पेश नहीं किया गया।)

***श्री एच.वी. कामतः** अध्यक्ष महोदय, आरम्भ में ही इस संशोधन को दो भागों में पेश करने की अनुमति प्राप्त करने के लिये मैं निवेदन करता हूं। संयोगवश सचिवालय में इन दोनों को मिलाकर एक संशोधन बना दिया गया है।

***अध्यक्षः** आप ऐसा कर सकते हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 102 के खंड (1) में 'when both Houses' शब्दों के स्थान में 'when one or both Houses' शब्द रखे जायें।''

अब हम संविधान के अनुच्छेद 69 को देखते हैं और उसके खंड (2) को पढ़ते हैं तो हमें विदित होता है कि राष्ट्रपति संसद के दोनों सदनों अथवा किसी सदन को समय-समय पर आह्वान कर सकता है। अत: यह कोई असम्भव बात नहीं है कि किसी विशिष्ट अवसर पर दोनों सदन सत्र में न हो वरन् केवल एक सदन ही सत्र में हो। अत: मैं राष्ट्रपति की शक्ति को केवल ऐसे अवसरों के लिये निर्बन्धित करूंगा जबकि कोई भी सदन सत्र में न हो। इस अनुच्छेद के अनुसार राष्ट्रपति को अध्यादेश प्रख्यापित करने का तभी अधिकार है जब दोनों सदन सत्र में न हों। जैसा कि मैं अनुच्छेद 69 का उल्लेख करते हुए कह चुका हूं ऐसा अवसर आ सकता है जबकि एक सदन सत्र में हो। अत: इस बात को स्पष्ट करने के लिये हमको यह कहना पड़ेगा कि ''केवल तभी जबकि संसद के दोनों सदन अथवा कोई एक सदन सत्र में हो''।

मेरा दूसरा संशोधन जो कि संशोधन संख्या 1793+ का पिछला आधा भाग है पूर्णतया शाब्दिक है। मैं केवल उसे नियमित रूप से पेश किये देता हूं और उस पर विचार करने के लिये उसे प्रारूप समिति पर छोड़ देता हूं, क्योंकि यह स्पष्ट है कि राष्ट्र एक अथवा एक से अधिक अध्यादेश प्रख्यापित कर सकता है। जिस रूप में अनुच्छेद है उसमें बहुवचन का प्रयोग हुआ है। जिस संयोग का मैंने उल्लेख किया है उसके लिये व्यवस्था करने के लिये मैंने इस संशोधन को पेश कर दिया है। यह विशुद्ध रूप में शाब्दिक है अत: मैं इस पर अधिक नहीं कहना चाहता हूं।

एक और तीसरा संशोधन, संशोधन संख्या 1794 मेरे नाम से है। 102 अनुच्छेद को पुन: पढ़ने पर मैं समझता हूं कि वह आवश्यक नहीं है क्योंकि स्वयं संतुष्ट होने के पूर्व राष्ट्रपति प्रत्येक साधन का आश्रय लेगा जो उसे उपलब्ध हैं और इसमें मंत्रि-परिषद् से परामर्श भी शामिल है। अत: मैं संशोधन 1794 को पेश नहीं करता हूं।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1795 शाब्दिक है अत: उसे पेश नहीं करने दिया जाता है।

***सरदार हुकम सिंह** (पूर्वी पंजाब : सिख): संशोधन संख्या 1794 मेरे नाम से भी है मैं उसे पेश करना चाहूंगा।

***अध्यक्ष:** मैं आपको बाद में अवसर दूंगा।

***मि. बी. पोकर साहिब:** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 102 के खंड (1) पर निम्न परन्तुक लगाया जाये:
>
> 'Provided that such ordinance shall not deprive any citizen of his right to personal liberty except on conviction after trial by a competent court of law.' ''

श्रीमान्, यह बड़ा ही महत्त्वपूर्ण विषय है जो प्रत्येक उस नागरिक के मौलिक अधिकार पर प्रभाव डालता है जिसका किसी सक्षम न्यायालय द्वारा मुकदमा किया जायेगा। पूर्व इसके

+कि ''Such Ordinances'' के स्थान में ''Such Ordinance or Ordinances'' शब्द रखे जायें।

[मि. बी. पोकर साहिब]

कि उसे अपने स्वातन्त्र्य से वंचित किया जाये। नि:सन्देह ऐसी परिस्थितियां हो सकती हैं जिनके अन्तर्गत शीघ्र ही कार्यवाही करनी पड़े परन्तु किसी सक्षम न्यायालय द्वारा मुकदमा किये जाने के मौलिक अधिकार से उसे वंचित नहीं करना चाहिये। जिस कारण मैंने इस संशोधन की सूचना दी है वह हमारा अभी हाल का अनुभव है जो हमें अध्यादेशों के प्रवर्त्तन करने और यहां तक कि उन लोक-रक्षा के अधिनियमों के प्रवर्त्तन के विषय में विभिन्न प्रान्तों में हुआ है जिन्होंने अध्यादेशों का रूप ग्रहण कर लिया है। बाद में इन अध्यादेशों को विधि बना दिया गया। परन्तु महत्त्वपूर्ण विषय जिस पर ध्यान जाना चाहिये वह यह है कि जिस नागरिक पर न्यायालय में मुकदमा चलाया जाता है वह अपने मौलिक अधिकारों से वंचित हो जाता है। मैं जानता हूं कि मद्रास प्रान्त में सैकड़ों ऐसे अभियोग हैं जिनमें उस प्रान्त के विधान-मंडल द्वारा पारित लोक सभा अधिनियम में दिये हुए उपबन्धों का भी पालन नहीं किया गया और बन्दी किये जाने के आधार को बनाये बिना ही लोगों को हफ्तों ही नहीं वरन महीनों बन्दी रखा गया और अभिरक्षा हेतु कैद रखा। यह बड़ी ही दुष्टतापूर्ण स्थिति है। आपकी दृष्टि में उच्च न्यायालय के वे निर्णय आ गये होंगे जिनका समाचार-पत्रों में प्रकाशन हो चुका है और अभी हाल में मद्रास के उच्च न्यायालय द्वारा इस प्रथा की बड़े कटु शब्दों में निन्दा की है। यह माना कि ऐसी आपातिक स्थिति हो सकती है जिस में असामान्य शक्ति का प्रयोग करना पड़े परन्तु उसमें किसी नागरिक को उसके मौलिक अधिकारों से वंचित नहीं करना चाहिये और फिर मैं तो यह नहीं समझ पाता कि आपातिक स्थिति उत्पन्न होने पर भी, जिसमें परन्तु कार्यवाही करना आवश्यक है, नागरिक को क्यों उस अधिकार से वंचित किया जाये। परन्तु जिस दुष्टतापूर्ण ढंग से लोक-रक्षा अधिनियम तक को प्रशासन में लाया जाता है उससे हमारी आंखे खुल जाती हैं कि राष्ट्रपति को ऐसे अध्यादेश पारित करने की शक्ति देना सह्य नहीं होना चाहिये जो नागरिकों को अपने स्वातन्त्र्य से वंचित करने की अनियंत्रित शक्तियां प्रदान करता है। अत: श्रीमान् मैं निवेदन करता हूं कि यह बड़ा ही आवश्यक तथा वांछनीय परन्तुक है जिसे इस खंड के पश्चात् जोड़ना चाहिये और मैं सदन से निवेदन करूंगा कि लोक-रक्षा-अध्यादेशों और लोक-रक्षा-अधिनियमों को प्रशासन में लाने के अभी हाल के अनुभवों पर वह विचार करे जिनके द्वारा निर्दोष नागरिकों को बिना मुकदमा चलाये महीनों लगातार बन्दी रखा जाता है तथा बहुत से अभियोगों में तो किसी व्यक्ति को अभिरक्षा हेतु महीनों कैद रखा जाता है और बिना कारण बताये उसे बाद में छोड़ दिया जाता है। श्रीमान्, मैं निवेदन करता हूं कि भविष्य में ऐसी स्थिति को सहन करने के लिये कोई नियम नहीं होना चाहिये। अत: मैं इस सदन के माननीय सदस्यों से इस विषय के इस पहलू पर गम्भीर विचार करने के लिये निवेदन करूंगा और चाहे इस खंड के प्रारूप के ध्याय में साम्यवादियों अथवा अन्य ऐसे निकायों का विचार रहा हो परन्तु फिर भी नागरिकों को अपने-अपने स्वातन्त्र्य से पूर्णतया ऐसे अध्यादेशों द्वारा वंचित करना न्यायमुक्त नहीं है और वह भी एक अनिश्चितकाल के लिये। अत: श्रीमान्, मैं निवेदन करता हूं कि यह सदन कृपा करके इस संशोधन को स्वीकार करेगा।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1797 श्री कामत द्वारा पेश किये संशोधन के अन्तर्गत आ जाता है।

(संशोधन संख्या 1798 और 1799 पेश नहीं किये गये।)

***श्री जसपतराय कपूर** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैंने संशोधन संख्या 1798 पर एक संशोधन पेश करने की सूचना दी है।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1798 पेश नहीं किया गया है। जो संशोधन पेश नहीं किया गया है उस पर संशोधन पेश करने का प्रश्न ही नहीं उठता है।

***श्री जसपतराय कपूर:** मुझे विश्वास है कि डा. अम्बेडकर उसे फौरन ही स्वीकार कर लेंगे। यद्यपि वह शाब्दिक संशोधन है पर है आवश्यक।

***अध्यक्ष:** यदि वह शाब्दिक संशोधन है जो आप उनसे (डा. अम्बेडकर) बातचीत कर सकते हैं।

***श्री जसपतराय कपूर:** उसे पेश करने दिया जाये या नहीं यह मैं आप पर छोड़ता हूं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** वह छपी हुई सूची में नहीं है।

***अध्यक्ष:** जो सूची आज घुमाई गई है वह उस सूची में है। सूची 2 (द्वितीय सप्ताह) पद संख्या 39।

***श्री जसपतराय कपूर:** श्रीमान्, मैं निवेदन करता हूं कि अनुच्छेद 102 के खंड (2) में 'assented to by the President'' शब्दों को निकाल दिया जाये क्योंकि ये शब्द स्पष्टतया निरर्थक हैं। यह एक विधेयक है जिसकी स्वीकृति दी जा रही है न कि अधिनियम। राष्ट्रपति द्वारा जब कोई विधेयक एक बार स्वीकार कर लिया जाता है तो वह अधिनियम बन जाता है। उसके पश्चात् राष्ट्रपति की और स्वीकृति की आवश्यकता नहीं है।

***अध्यक्ष:** यह संशोधन पर संशोधन नहीं है। वास्तव में यह तो मूल अनुच्छेद पर संशोधन है।

***श्री जसपतराय कपूर:** उस संशोधन पर यह संशोधन मात्र है।

***अध्यक्ष:** किसी पूर्व अवसर पर मैंने इस प्रकार के संशोधन को पेश नहीं होने दिया था जो संशोधन पर संशोधन के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। मैं इस बार भी इसे नियम विरुद्ध घोषित करता हूं।

(संशोधन संख्या 1800 पेश नहीं किया गया।)

***श्री एच.वी. कामत:** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 102 के खंड (2) के उपखंड (क) में 'both Houses of Parliament' शब्दों के पश्चात् 'within four weeks of its promulgation' शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

[श्री एच.वी. कामत]

यदि सदन द्वारा मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया जाता है तो खंड इस प्रकार पढ़ा जायेगा:

''Every such ordinance, shall be laid before both Houses of Parliament within four weeks of its promulgation, etc., etc.''

मेरे इस संशोधन का महत्त्व अथवा औचित्य एक कमी के कारण उत्पन्न होता है जो यहां आ गई है। राष्ट्रपति द्वारा प्रख्यापित किसी अध्यादेश की अवधि की व्यवस्था इस अध्याय में कोई भी अनुच्छेद नहीं करता है। अब तक हम इसी ख्याल में थे, कम से कम भारतीय सरकार के अधिनियम तथा गवर्नर-जनरल की उसमें दी हुई अध्यादेश बनाने की शक्ति के अनुभव के आधार पर, कि एक अध्यादेश स्वाभाविक रूप से छः महीने के अवसान पर समाप्त हो जाता है।

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद में कहा गया है कि ''संसद के पुनः बैठने के छः सप्ताह के अन्त हो जाने पर प्रवर्त्तन में न रहेगा।''

***श्री एच.वी. कामत:** संसद के पुनः एकत्रित होने से छः सप्ताह। संसद को कभी आहूत नहीं किया जाता है। अपने राष्ट्रपति से हम एक संवैधानिक राष्ट्रपति होने की आशा करते हैं और यह आशा करते हैं कि वे सदा संसद की मंत्रणा अथवा निर्देश के अनुसार कार्य करेंगे। परन्तु यह कौन जानता है कि हमारे भाग्य में क्या बदा है? यदि राष्ट्रपति एकाधिपति होना चाहता है अथवा एकाधिपति की शक्तियों का प्रयोग करना चाहता है और यदि इस अनुच्छेद को ज्यों का त्यों रहने दिया जाता है तो जो आपात उत्पन्न हुआ है उस पर अथवा जिन परिस्थितियों के कारण उसके लिये अध्यादेश का प्रख्यापन करना आवश्यक हो गया है उन पर विचार करने के लिये वह संसद को आहूत ही न करे। यदि हम समस्त अध्याय को पढ़ जायें तो हमें विदित होगा कि संसद को आहूत करने के लिये कोई अवधि नहीं है। अनुच्छेद में केवल यह कहा गया है कि अध्यादेश संसद के दोनों सदनों में रखा जायेगा। मान लीजिये राष्ट्रपति संसद का आह्वान करता है और वह एक वर्ष के बाद–अम्बेडकर अपनी भावभंगी से 'नहीं' कह रहे हैं—कदाचित् उनकी बुद्धि संवैधानिक है और यदि उनको राष्ट्रपति चुना जाये तो वे एकाधिपति की शक्तियों का प्रयोग नहीं करेंगे—परन्तु वास्तव में उनसे भिन्न प्रकार का मनुष्य इस अनुच्छेद से अनुचित लाभ उठा सकता है और युक्तियुक्त काल के अन्तर्गत ससंद का आह्वान नहीं करेगा। इसलिये मैं समझता हूं कि यह आवश्यक है।

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 69 खंड (1) कदाचित् इस स्थिति को स्पष्ट कर देगा। उसमें यह दिया हुआ है ''संसद के सदनों को प्रत्येक वर्ष में कम से कम दो बार अधिवेशन के लिये आहूत किया जायेगा तथा उनके एक सत्र की अन्तिम बैठक और आगामी सत्र की प्रथम बैठक के लिये नियुक्त तिथि के बीच छः मास का अन्तर न रहेगा।''

***श्री एच.वी. कामत:** अध्यादेश का प्रख्यापन करने के छः माह के पश्चात् वह आगामी सत्र आहूत कर सकता है। और फिर संसद के समारम्भ से छः सप्ताह के पश्चात् वह

अध्यादेश समाप्त होता है। इसका यह अभिप्राय है कि अध्यादेश का प्रवर्त्तन साढ़े सात माह अथवा साढ़े सात माह से एक या दो दिन कम तक रह सकता है न कि छः माह तक जैसा कि अंग्रेजी शासन व्यवस्था तक में था। कम से कम इस रूप में यह बड़ा ही महत्त्वपूर्ण अध्याय है कि हम राष्ट्रपति को कुछ ऐसी शक्तियां सौंपने अथवा उनसे सुसज्जित करने का प्रयास कर रहे हैं जिनके विरुद्ध कांग्रेस तथा समस्त देशभक्त अंग्रेजी शासन में लड़े—मेरा अभिप्राय गवर्नर-जनरल की अध्यादेश बनाने की शक्ति से है। मैं चाहता हूं कि इस शक्ति को जितना हम निर्बन्धित कर सकते हैं उतना करें। अतः इस अनुच्छेद का दुरुपयोग न करने देने के लिये मैं संवैधानिक रक्षा-कवच की व्यवस्था करना चाहता हूं। मैं इस अनुच्छेद में यह व्यवस्था लाना चाहता हूं कि राष्ट्रपति द्वारा प्रख्यापित अध्यादेश प्रख्यापन तिथि से चार सप्ताह के भीतर संसद के समक्ष प्रस्तुत किया जायेगा। इसमें कोई व्यावहारिक कठिनाई नहीं है। मुझे विश्वास है कि जैसा अन्य अनेक देशों में किया जाता है दो सप्ताह में हमें संसद को आहूत किया जा सकता है। आप आपातिक सत्र को आहूत कर सकते हैं और संसद के दोनों सदनों को आहूत करने के लिये चार सप्ताह का समय बहुत पर्याप्त है।

यदि हम अनुच्छेद 275 को देखें तो खंड (2) के उपखंड (ग) में यह निश्चित रूप से दिया हुआ है कि ''छः मास के अवसान पर उद्घोषणा प्रवर्त्तन शून्य हो जायेगी ...।'' परन्तु यहां जैसा कि मैं बता चुका हूं यह कमी आ गई है और मैं खुश होऊंगा यदि निश्चित रूप से यह निर्धारित कर दिया जाये कि राष्ट्रपति द्वारा प्रख्यापित कोई अध्यादेश छः मास के अवसान पर प्रवर्त्तनशून्य हो जायेगा मैं नहीं समझ पाता हूं कि प्रारूप समिति के बुद्धिमान व्यक्तियों से यह चूक किस प्रकार हो गई। मैं प्रसन्न होऊंगा यदि इस प्रभाव का यह रक्षा-कवच इस अध्याय में निर्धारित कर दिया जाता है कि छः माह के अवसान पर कोई अध्यादेश प्रवर्त्तन में न रहेगा अथवा यह कि प्रत्येक अध्यादेश की छः मास के पश्चात् स्वयं ही समाप्ति हो जायेगी। यदि इसको स्वीकार नहीं किया जाता है तो मैं समझता हूं कि केवल मेरा संशोधन ही कि अध्यादेश के प्रख्यापन करने के चार सप्ताह के भीतर संसद का आह्वान होना चाहिये। यह अनुच्छेद इस बात की व्यवस्था करता है कि उसके बाद छः सप्ताह के भीतर वह प्रभाव शून्य हो जायेगा। इससे अध्यादेश बनाने की शक्ति बहुत कुछ निर्बन्धित हो जायेगी। इससे अध्यादेश की अवधि अधिक से अधिक दस सप्ताह की रह जायेगी। ऐसा हो सकता है कि राष्ट्रपति को कभी-कभी अध्यादेश प्रख्यापित करने पड़ें और यह भी हो सकता है कि प्रत्येक बार विभिन्न कारणों वश संसद का आहूत करना व्यावहार्थ न हो सके। तो फिर इस अनुच्छेद में यह स्पष्ट कर देना चाहिये कि प्रख्यापन के छः मास के अवसान पर किसी अध्यादेश का कोई प्रभाव न रहेगा। यदि यह अनुच्छेद अध्यादेश की अधिकतम अवधि निर्विष्ट करता है तो मैं अपने संशोधन पर जोर नहीं देता हूं पर चाहे डा. अम्बेडकर मेरे संशोधन को स्वीकार न करें फिर भी मैं आशा करता हूं कि वे इस बात के लिये विशिष्ट रूप से व्यवस्था करेंगे कि प्रख्यापन की तिथि से छः मास के अवसान पर कोई भी अध्यादेश प्रवर्तन में न रहेगा। केवल अनुच्छेद 69 के क्रियाकरण पर ही हमें इस बात को नहीं छोड़ देना चाहिये क्योंकि उस अनुच्छेद के अधीन जैसी कि मैंने साधारण गणित के अनुसार गणना की है एक अध्यादेश साढ़े सात मास तक प्रवर्त्तन में रह सकता है। अतः मैं आशा करता हूं कि मसौदा-समिति इस विषय पर फिर से विचार करेगी और प्रख्यापन की तिथि से अधिक से अधिक छः मास के अवसान पर किसी अध्यादेश के प्रभावशून्य हो जाने की व्यवस्था करेगी।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1802। मैं समझता हूं कि यह संशोधन संशोधन संख्या 1805 के साथ है। दोनों को एक साथ पेश किया जा सकता है। क्या आप दोनों संशोधनों को साथ-साथ अथवा अलग-अलग पेश करना चाहेंगे?

पं. हृदयनाथ कुंजरू (संयुक्तप्रान्त : जनरल): मैं संशोधन संख्या 1805 को पेश नहीं करना चाहता हूं। श्रीमान् मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 102 के खंड (2) के उपखंड (क) में 'six weeks from the re-assembly of Parliament' शब्दों के स्थान में 'thirty days from the promulgation of the Ordinance' शब्द रखे जायें।''

अनुच्छेद 102 में यह अपेक्षित है:

> ''इस अनुच्छेद के अधीन प्रख्यापित अध्यादेश को संसद के दोनों सदनों के समक्ष रखा जायेगा और संसद के पुन: अधिविष्ट होने से छ: सप्ताह के अवसान पर, अथवा यदि उस कालावधि के अवसान से पूर्व उसकी प्रतिनिन्दा का संकल्प दोनों सदनों से पारित हो जाता है, तो इनमें से दूसरे संकल्प के पारण होने पर, प्रवृत्त न रहेगा।''

यह एक प्रमुख विषय है जिस पर अनेक यूरोपीय देशों में अभी हाल में पारित किये गये संविधानों में अधिक से अधिक महत्त्व दिया गया है। एक अध्यादेश पारित करने की शक्ति कार्यपालिका को कुछ काल के लिये कोई विधि पारित करने की शक्ति देने के समान है। यदि देश में ऐसा आपात है जिसके लिये यह अपेक्षित है कि अध्यादेश के प्रख्यापन द्वारा तुरन्त ही कार्यवाही की जाये तो स्पष्ट रूप से यह आवश्यक है कि उस विषय पर विचार करने के लिये यथासंभव शीघ्र संसद आहूत की जाये। मान लीजिये देश में विधि और व्यवस्था पर बहुत गम्भीर प्रभाव पड़ता है और उस समय की सरकार यह आवश्यक समझती है कि स्थिति को खराब होने से रोकने के लिये अथवा उसको काबू में लाने के लिये तुरन्त ही अध्यादेश प्रख्यापित किया जाये और यह भी स्पष्ट है कि यदि विधान-मंडल अधिविष्ट नहीं है तो देश में शान्ति बनाये रखने के लिये, कार्यपालिका को यह अधिकार होना चाहिये कि वह अपने आपको पर्याप्त शक्ति से सुसज्जित कर सके। परन्तु यह भी समान रूप से आवश्यक है कि उस गंभीर स्थिति पर विचार करने के लिये, जो उस अध्यादेश के प्रख्यापन को आवश्यक बना देती है, विधान-मंडल को बिना परिहार करने योग्य विलम्ब के आहूत किया जाये। अत: मैं यह नहीं समझ पाता हूं कि गवर्नर-जनरल द्वारा प्रख्यापित कोई अध्यादेश कई महीनों तक क्योंकर प्रवृत्त रहे। जिस रूप में यह अनुच्छेद है उसमें दो बातें हैं—पहली यह कि अध्यादेश जब तक प्रवर्त्तन में रहेगा तब तक संसद की बैठक न हो, दूसरी यह कि संसद की बैठक होने पर भी वह तुरन्त ही प्रभावशून्य नहीं होगा परन्तु यदि उस कालावधि के अवसान के पूर्व यदि उसको दोनों सदनों द्वारा अस्वीकार नहीं कर दिया जाता है तो वह संसद के पुन: अधिवेष्टित होने पर छ: सप्ताह तक प्रवर्त्तन में रहेगा। मैं जानता हूं कि यही कार्यप्रणाली भारतीय सरकार के सन् 1935 ई. के अधिनियम में निर्धारित की गई थी परन्तु जिन परिस्थितियों में यह अधिनियम पारित किया गया था उनमें वह कार्यप्रणाली समझ में आने योग्य थी। उस अधिनियम के उपबंध

इस प्रकार के थे कि जिनके द्वारा ब्रिटिश सरकार अन्तिम प्रयत्न द्वारा देश में विधि और व्यवस्था बनाये रखने के लिये प्राधिकार का प्रयोग कर सके। अब वह सब बदल चुका है। हमारे यहां अब उत्तरदायित्वपूर्ण मंत्री-मंडल है। अत: ऐसा कोई कारण नहीं है कि भारतीय सरकार के सन् 1935 ई. के अधिनियम में निर्धारित ढंग का हम अपने नव-विधान में अनुकरण करने का प्रयास करें।

श्रीमान्, ऐसे अनेको देश हैं जिनमें कार्यपालिका को यह शक्ति नहीं है। कुछ ऐसे देश हैं जिनमें यद्यपि कार्यपालिका आज्ञप्ति प्रख्यापन करने की शक्ति से सुसज्जित है पर उसे यथासम्भव शीघ्र ही विधानमंडल आहूत करना पड़ता है और उसके समक्ष कुछ विशेष प्रकार की आज्ञप्तियों को रखना पड़ता है। फ्रांस का उदाहरण लीजिये। मेरा ख्याल यह है कि जिस कालावधि के लिये वहां अध्यादेश प्रवृत्त रह सकता है वह इस कालावधि से बहुत कम है जो सभा द्वारा अनुच्छेद 102 को पारित कर लेने पर होती है। मैं नहीं समझता हूं कि नई परिस्थितियों में कार्यपालिका को उन बृहद् शक्तियों से सुसज्जित करना जो भारतीय सरकार के सन् 1935 ई. के अधिनियम द्वारा सौंपी गई थीं किसी प्रकार से भी न्याययुक्त है। समस्त विधान और अध्यादेश भी एक विशिष्ट प्रकार का विधान ही है, संसद की स्वीकृति के अधीन है और इस स्वीकृति के लिये यथासम्भव शीघ्र प्रयास करना चाहिये।

श्रीमान्, एक उदाहरण देकर मैं अपने अभिप्राय को और भी अधिक स्पष्ट करूंगा। मान लीजिये कि सभा के शीतकालीन सत्र के पश्चात् ही देश में ऐसी परिस्थिति उठ खड़ी होती है जिसके लिये अध्यादेश का प्रख्यापन करना आवश्यक है। सामान्यतया दूसरा सत्र आगामी अक्टूबर या नवम्बर मास में होता है। यदि अनुच्छेद 102 स्वीकार कर लिया जाता है तो अध्यादेश लगभग छ: मास और सम्भवतया उसके पश्चात् छ: सप्ताह तक और प्रवृत्त रह सकता है। अत: अध्यादेश के प्रवर्त्तन में रहने की अधिकतम अवधि साढ़े सात मास तक हो सकती है। यह स्पष्ट है कि यह बहुत ही लम्बी अवधि है और इस बात के लिये कोई कारण नहीं है कि कार्यपालिका को इतने दीर्घकाल के लिये विधान बनाने की शक्ति क्योंकर हो। अत: मैं समझता हूं कि अवधि इतनी ही होनी चाहिये कि जिसमें विधान-मंडल बैठक कर सके और उस असामान्य स्थिति पर विचार कर सके जिसके लिये अध्यादेश का प्रख्यापन करना अपेक्षित है जो किसी न किसी रूप में देश की शान्ति अथवा सुरक्षा पर प्रभाव हो जाने के कारण आवश्यक अध्यादेश हो गया हो। उदाहरण के लिये यदि कोई चुंगी सम्बन्धी विधियां हैं जिनमें देश के आर्थिक हित के लिये तुरन्त परिवर्तन करना अपेक्षित है तो कार्यपालिका आवश्यक परिवर्तन कर सकती है और यदि हम छ:, सात या आठ मास तक प्रतीक्षा करें और इस समय के पश्चात् ही यदि विधान-मंडल उस विधान पर विचार करे तो कोई हानि नहीं होगी। परन्तु जबकि अध्यादेश का सम्बन्ध देश की शान्ति और सुरक्षा से है अथवा ऐसी ही परिस्थिति से है जिसके लिये एक अध्यादेश के अधीन कार्यपालिका द्वारा असामान्य कार्यवाही करना अपेक्षित है तो मैं समझता हूं कि हमें यह देखना होगा कि जिस अवधि तक वह अध्यादेश प्रवृत्त रहता है वह यथासंभव कम हो और कोई भी विधान जो अपेक्षित है समस्त परिस्थितियों पर उचित विचार करने के पश्चात् संसद द्वारा पारित किया जाये।

श्रीमान्, मेरी आपत्ति केवल यही नहीं है कि जिस अवधि तक अध्यादेश प्रवृत्त रहेगा वह बहुत लम्बी है, वरन् वह उस अध्यादेश के रूप से भी सम्बन्ध रखती है जो प्रख्यापित

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

किया जायेगा। कार्यपालिका जल्दबाजी में ऐसा अध्यादेश पारित कर सकती है जो यद्यपि आंशिक रूप में आवश्यक हो परन्तु अपने समस्त विवरण सहित अपेक्षित न हो। अतः यह आवश्यक है कि विधान-मंडल को एक अवसर दिया जाये केवल उस स्थिति पर ही विचार करने के लिये नहीं जिसके कारण अध्यादेश पारित करना अपेक्षित है वरन् अध्यादेश के निबन्धनों पर भी विचार करने के लिये। श्रीमान्, यह सम्भव हो सकता है कि विधान-मंडल इस विचार को रखते हुए भी कि कोई विधान आवश्यक है कार्यपालिका से पूर्णतया सहमत न हो और जो अध्यादेश प्रख्यापित किया जा चुका है उसमें रूप भेद कर दे। श्रीमान्, इन दो कारणों के आधार पर मैं यह बहुत हो आवश्यक समझता हूं कि कार्यपालिका को अध्यादेश पारित करने की जो शक्ति दी गई है वह अनुच्छेद 102 के अन्तर्गत जितनी होगी उससे बहुत कुछ सीमित कर देनी चाहिये। मैं आशा करता हूं कि मेरे माननीय मित्र डा. अम्बेडकर इस विषय पर उतना विचार करेंगे जितने विचार के ये योग्य हैं और मुझसे इस बात में सहमत होंगे कि यह ऐसा विषय है जिस पर यदि आवश्यक समझा जाये तो आगार से विचार स्थगित करने के लिये निवेदन किया जाये यदि वे आवश्यक संशोधन को तैयार करके नहीं लाये हों।

श्रीमान्, यह हो सकता है कि जिस रूप में मैंने यह संशोधन रखा है सम्भव है कि वह दोषयुक्त हो। किसी सदस्य के लिये इसमें दोष निकालना बहुत ही सरल होगा। परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि विनाशकारी आलोचना की जाये वरन् ऐसी कार्यवाही की जाये जो देश के नये संवैधानिक स्थिति से संगत हो और विधान-मंडल के उत्तरदायित्वों के अनुरूप हो।

***अध्यक्षः** क्या इस समय मैं यह संकेत करूं कि आपको संशोधन संख्या 1805 पेश करना है क्योंकि यदि यह संशोधन स्वीकार कर लिया जाता है तो वह आवश्यक हो जाता है।

***पं. हृदयनाथ कुंजरूः** जी हां, मैं आपसे सहमत हूं। मैं समझता हूं कि इसको पेश करना चाहिये। अतः श्रीमान्, मैं पेश करता हूंः

''कि अनुच्छेद 102 के खंड (2) की व्याख्या निकाल दी जाये।''

मुझे इस संशोधन के बारे में कुछ नहीं कहना चाहिये क्योंकि जो संशोधन में पेश कर चुका हूं उसके फलस्वरूप यह संशोधन है।

***अध्यक्षः** इस संशोधन पर संशोधन की सूचना श्री जसपतराय कपूर ने दी है। क्या वे उसे पेश करेंगे?

***श्री जसपतराय कपूरः** जी नहीं।

***अध्यक्षः** प्रो. शाह।

***प्रो. के.टी. शाहः** अध्यक्ष महोदय, श्रीमान् मैं प्रस्ताव पेश करता हूंः

''कि अनुच्छेद 102 के खंड (2) के उपखंड (क) में 'Parliament' शब्द के पश्चात् जहां कि वह प्रथम बार आता है 'immediately after each House

assembles' शब्द प्रविष्ट कर दिये जाये; जहां 'and' शब्द प्रथम बार आता है उसके पश्चात् 'unless approved by either House of Parliament by specific Resolution' शब्द तथा 'operate' शब्द के पश्चात् 'forthwith' शब्द प्रविष्ट किये जायें और 'at the expiration of six weeks from the re-assembly of Parliament, or, if before the expiration of that period resolutions disapproving it are passed by both Houses, upon the passing of the second of those resolutions; शब्द निकाल दिये जायें।''

श्रीमान्, संशोधित खंड इस प्रकार का हो जायेगा।

'Every such Ordinance shall be laid before both Houses of Parliament immediately after each House assembles, and unless approved by either House of Parliament by specific Resolution, shall cease to operate with.''

'at the expiry of six weeks, इत्यादि, इत्यादि'' सब के सब शब्द निकाल दिये जायेंगे।

श्रीमान्, मेरे संशोधन का सिद्धांत वही है जिसका पंडित कुंजरू ने इतना जोरदार समर्थन किया है। मुझे विश्वास है कि हम में से अधिकांश अध्यादेश बनाने की शक्ति को मुख्य कार्यपालिका में निहित करने से कुछ सीमा तक घृणा अथवा अविश्वास करते हैं चाहे हम उस पर कितना ही आवरण डालें चाहे वह कितना ही आवश्यक हो, चाहे वह कितना ही न्यायमुक्त हो परन्तु वह विधि-नियम का निषेध है। अर्थात् यद्यपि वह सामान्य विधान-मंडल द्वारा पारित विधान नहीं है फिर भी उसे विधि की शक्ति होगी जो अवांछनीय है। चाहे वह अत्याज्य हो तथा इससे भी अधिक चाहे वह आपात के समय में समर्थनीय हो पर इसी तथ्य से कि वह असामान्य अथवा आपात शक्ति है, वह विधान-मंडल द्वारा विचार-विमर्श किये बिना कार्यपालिका का पारित आदेश अथवा आज्ञप्ति है यह बात स्पष्ट हो जाती है कि ऐसी असामान्य परिस्थितियों के लिये जितने समय के लिये वह अपेक्षित है उससे एक पल अधिक न उसको रहने दिया जा सकता है और न रहने देना चाहिये।

या तो कई संविधानों में प्रमुख कार्यपालिका को यह शक्ति दी ही नहीं गई है और यदि दी भी गई है तो किसी ऐसे तरीके से जो इस संशोधन द्वारा प्रस्तावित किया गया है उसको जितना प्रभाव तथा कठोरता से हो सका है उतना संकुचित किया गया है। अर्थात् यदि अध्यादेश आपात के समय अथवा असामान्य परिस्थितियों का सामना करने के लिये पारित किया जाता है तो संसद के दोनों सदनों के अधिविष्ट होते ही उनके समक्ष रख देना चाहिये और यदि विशिष्ट संकल्पों द्वारा प्रत्येक सदन से वह स्वीकार नहीं किया जाता है तो वह प्रभावशून्य हो जाना चाहिये। नागरिक स्वातंत्र्य के हित में यह कम से कम आवश्यक है।

[प्रो. के.टी. शाह]

मैं समझता हूं कि इस अन्तिम शक्ति को कार्यपालिका के हाथों में देने के प्रति हम इससे अधिक अपना अविश्वास प्रकट नहीं कर सकते कि यह अपेक्षा की जाये कि जब तक संसद उसे स्वीकार नहीं कर लेती है या यूं कहिये कि इस प्रकार अपना निजी अधिनियम नहीं बना लेती है तथा जब तक विधान मंडल उसे अपना निजी अधिनियम नहीं बना लेता है तो राष्ट्रपति द्वारा पारित इस प्रकार का कार्यपालिका का विधान तुरन्त ही प्रभावशून्य हो जायेगा। उस अधिकतम काल के प्रति, जिसके अन्तर्गत राष्ट्रपति का अध्यादेश प्रवृत्त रह सकता है, हमें किसी संदेह की गुंजाइश नहीं रखनी चाहिये। यदि संसद का सत्र नहीं हो रहा है अथवा साधारण निर्वाचन लम्बित है इस कारण संसद का अधिवेशन नहीं हो सकता है तो कुछ समय दिया जा सकता है परन्तु वह यथासम्भव कम से कम होना चाहिये। इस दशा में निस्सन्देह अन्य संशोधन, जो पेश हो चुके हैं, प्रवृत्त होंगे और मैं आशा करता हूं कि वे अवश्य प्रवृत्त होंगे। अर्थात् यह कि संविधान द्वारा अध्यादेश की अधिकतम कालावधि सीमित कर देना चाहिये। चाहे कोई अध्यादेश किसी समय आवश्यक हो, चाहे वह किसी आपात के कारण अत्याज्य तथा समर्थनीय हो पर उसकी अधिकतम कालावधि तीन या चार मास तक अथवा अधिक से अधिक छः मास तक सीमित कर देना चाहिये। यद्यपि यह अवधि अनावश्यक है परन्तु सिद्धांत महत्त्वपूर्ण है। यह कहकर कि अवधि अनावश्यक है मैं यह सुझाव नहीं करता हूं कि उसको किसी भी समय तक के लिये प्रसारित कर दिया जाये। जो कुछ मैं कहना चाहता हूं वह यही है कि तीन, चार या छः सप्ताह में कोई अधिक अन्तर नहीं हो जायेगा। अध्यादेश बनाने का कार्य स्वयं ही असामान्य तथा अवांछनीय शक्ति होने के कारण इसको इसकी अवधि के लिये अधिकतम काल विनिहित कर निबन्धित करना चाहिये।

दूसरी बात यह है कि यदि किसी दशा में इस अवधि में और अधिक समय बढ़ाने की आवश्यकता प्रतीत होती है तो संसद को बुलाया जाये और प्रत्येक सदन उस अध्यादेश पर विचार करे और यदि किसी विशिष्ट संकल्प द्वारा प्रत्येक सदन से वह स्वीकार नहीं किया जाता है तो उस अध्यादेश को उसी समय से प्रभावशून्य समझा जाये।

केवल इन निबंधों और परिसीमाओं के अधीन मैं समझता हूं कि राष्ट्रपति में इस असामान्य शक्ति के निहित होने से सहमत हो सकते हैं।

यह सत्य है कि यद्यपि अध्यादेश बनाने का नाममात्र का प्राधिकार राष्ट्रपति को है परन्तु वे केवल प्रधानमंत्री की मंत्रणा पर कार्यवाही करेंगे और स्वाभाविक रूप से प्रधानमंत्री संसद के प्रति उत्तरदायी होगा जहां तक कि उत्तरदायित्व पूर्ण मंत्रिमंडल के साधारण उपचारों का प्रभाव पड़ सकता है। इस बात के होते हुए भी मैं इसे दलबन्दी की आवश्यकताओं अथवा संभावनाओं पर निर्भर नहीं करूंगा कि वह यह देखें कि ऐसी असामान्य शक्तियां किस समय अथवा किस अवधि तक प्रयोग में लाई जायें और इसी कारण मैं यह चाहूंगा कि संविधान के अंतर्गत संविधान के द्वारा अध्यादेश की अवधि के लिये अधिकतम काल निहित किया जाये और एक निश्चित कार्यप्रणाली निर्धारित की जाये जिसके द्वारा संसद

के प्रत्येक सदन से एक विशिष्ट संकल्प द्वारा वह अध्यादेश स्वीकृत किया जा सके। मैं आशा करता हूं कि यह अतिमहत्त्वपूर्ण विषय सदन को स्वयं मान्य होगा और संशोधन स्वीकार हो जायेगा।

(संशोधन संख्या 1804, 1806, 1807 और 1808 पेश नहीं किये गये।)

***सरदार हुकम सिंह:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं।

> ''कि अनुच्छेद 102 के खंड (1) में 'except when both Houses of Parliament are in session' शब्दों के पश्चात् 'after consultation with his Council of Ministers' शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

यह इतना स्पष्ट है कि शायद मुझे यह उत्तर मिले कि सब संविधानों में यह माना जाता है कि संवैधानिक प्रमुख सदैव मंत्रि-परिषद् की मंत्रणा के अनुसार कार्य करता है और अन्य संविधानों में यह विशेष रूप में नहीं दिया जाता है कि वह ऐसा करे। इस बात को जानते हुए भी मैंने यह संशोधन पेश किया है क्योंकि मैं अनुभव करता हूं कि हम एक लिखित संविधान बना रहे हैं जिसमें हम प्रत्येक विवरण रख रहे हैं और जिसके फलस्वरूप यह संविधान बहुत बड़ा तथा भारी हो गया है। इन परिस्थितियों में मैं समझता हूं कि इतना महत्त्वपूर्ण विषय जो इतना स्पष्ट है अवश्य रखा जाये। यह कहा जा सकता है कि परम्परा अपने आप बन जायेगी और राष्ट्रपति को अपने मंत्रियों से मंत्रणा करनी होगी। मेरा निवेदन यह है कि यहां तो अभी परम्परा बनेगी। हम अपने राष्ट्रपति को संवैधानिक प्रमुख बना रहे हैं और उसे वे शक्तियां सौंप रहे हैं जो अनन्य प्रतीत होती हैं परम्परा धीरे-धीरे बनेगी परन्तु चूंकि यह संविधान लिखित है और प्रत्येक बारीकी पर विचार किया जा रहा है तो फिर इस तथ्य को किसी व्यक्ति की इच्छा अथवा तरंग पर क्यों छोड़ा जाये चाहे वह कितना ही बड़ा क्यों न हो? यदि यह हम स्पष्ट निर्धारित कर दें कि उसे मंत्रियों की मंत्रणा के अनुसार कार्य करना होगा तो उसकी स्थिति के लिये यह अपमानजनक नहीं होगा।

***श्री आर.के. सिधवा:** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): एक औचित्य सम्बन्धी प्रश्न है श्रीमान्, श्री पोकर द्वारा पेश किया गया संशोधन नियम-विरुद्ध है। उनका संशोधन इस प्रकार है:

> ''Provided that such ordinance shall not deprive any citizen of his right to personal liberty except on conviction after trial by a competent court of law.''

यदि आप मौलिक अधिकारों में अनुच्छेद 15 को देखें जिसको हम पारित कर चुके हैं तो उसमें कहा गया है:

> ''भारत के राज्यक्षेत्र में किसी व्यक्ति को अपने प्राण अथवा दैहिक स्वातन्त्र्य से विधि द्वारा नियत कार्यप्रणाली को छोड़कर अन्य प्रकार वंचित न किया जायेगा और न किसी व्यक्ति को विधि के सामने समता से अथवा विधियों के संरक्षण से वंचित रखा जायेगा।''

[श्री आर.के. सिधवा]

यह अनुच्छेद जो हमने पारित कर दिया है निश्चित रूप से इस बातों की व्याख्या करता है कि दैहिक स्वातन्त्र्य क्या है और उनका किस प्रकार संरक्षण किया जायेगा। अतः यह संशोधन नियम विरुद्ध होगा।

***अध्यक्षः** मैं नहीं समझता हूं कि यह नियम-विरुद्ध है। वह अनुच्छेद 15 से असंगत नहीं जिसको हम पारित कर चुके हैं। वह केवल उसकी पुष्टि करता है। इस कारण मैं इस संशोधन की आज्ञा देता हूं।

***डा. पी.एस. देशमुखः** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान्, इस अनुच्छेद पर बहुत से संशोधन पेश किये गये हैं। सदन के लिये यह स्वाभाविक होगा कि वह इस बात पर जोर दे कि न तो संसद की साधारण शक्तियों को परिसीमित किया जायेगा और न संसद की इच्छाओं का किसी अप्रत्यक्ष रूप में दमन किया जायेगा। इसी उद्देश्य से इस सदन के अनेक माननीय सदस्य अध्यादेश के प्रवर्त्तन की कालावधि को सीमित करने के लिये प्रस्तुत हुए हैं और इस बात पर आग्रह करते हैं कि राष्ट्रपति संसद के सदनों का सत्र यथासम्भव शीघ्र बुलायेगा। जो संशोधन पेश किये गये उनमें से किसी के समर्थन में दिये गये भाषणों से मैं बहुत अधिक प्रभावित नहीं हुआ हूं।

पहला संशोधन, जिसको श्री पोकर ने पेश किया है, बहुत ही गलत जगह पर है। यही नहीं कि किसी व्यक्ति को बिना किसी विधि के, जिसके अन्तर्गत उसे बन्दी किया जा सकता है। बन्दी करने के सम्बन्ध में पर्याप्त उपबन्ध न बनाये हों वरन् यह वह स्थल नहीं है, जहां कि ऐसा संशोधन पेश किया जाये क्योंकि मैं तो यह नहीं समझता हूं कि सभा को इस बात से भयभीत होने की आवश्यकता है कि राष्ट्रपति बिना व्यवस्था के लोगों को गिरफ्तार करने के लिये अपनी शक्ति का दुरुपयोग करेगा अथवा भारत के किसी नागरिक वर्ग को अपने स्वातन्त्र्य से वंचित करने के लिये अध्यादेश प्रख्यादित करेगा। किसी दशा में भी मूलाधिकारों के स्वीकार हो जाने पर मैं नहीं समझता हूं कि श्री पोकर द्वारा पेश किये गये संशोधन की कोई आवश्यकता है। वर्तमान समय में गिरफ्तारी की विधियों के, लोक-रक्षा-अधिनियम के तथा प्रान्तों में पारित अन्य विधियों के अधीन बहुत मनुष्य अपने स्वातन्त्र्य से वंचित कर दिये गये हैं। माननीय सदस्यों की यह शिकायत सही है कि प्रान्तों में प्रवृत्त लोक-रक्षा-अधिनियमों के उपबन्धों का मनमाने तथा कष्टदायक रूप में प्रयोग किया गया है और इससे बहुत कुछ असंतोष हुआ है। परन्तु हम प्रान्तों अथवा उनकी शक्तियों पर विचार नहीं कर रहे हैं। यहां हम राष्ट्रपति की विधायी शक्तियों पर विचार कर रहे हैं और हमें इस तथ्य पर ध्यान देना पड़ेगा कि वर्तमान समय में केवल आरक्षी अथवा न्यायाधीश के रूप में सरकारें समाप्त हो चुकी हैं। एक समय ऐसा था जब संसार की सभी सरकारें केवल आरक्षी तथा न्यायाधीश ही थीं। परन्तु आजकल सरकारी कार्यवाही के क्षेत्र के बाहर कोई चीज नहीं है। अन्य बातों के साथ-साथ आजकल की सरकारें दूकानदार भी हैं, कमीशन एजेंट भी हैं और यहां तक कि ठेकेदार भी हैं। वर्तमान परिस्थितियों में हर प्रकार का कार्य जिसे एक सामान्य नागरिक करता था सरकार द्वारा

किया जाता है। श्रीमान्, इस कारण मैं समझता हूं कि जो शक्तियां हम राष्ट्रपति को दे रहे हैं वे और भी अधिक आवश्यक हैं क्योंकि नित्य प्रति का प्रशासन बहुत जटिल हो गया है।

उदाहरण के लिये नियंत्रणों के प्रशासन को ही लीजिये। ऐसे हजारों अवसर आयेंगे जबकि कार्यपालिका के लिये इस प्रकार की कोई शक्ति रखना आवश्यक हो जायेगा। इस वर्तमान असाधारण काल में जो संसार काल में जो संसार भर में छाया हुआ है, मैं समझता हूं कि यह नितान्त आवश्यक तथा वांछनीय है कि राज्य के मुखिया को ये असामान्य शक्तियां दी जायें।

***श्री एच.वी. कामतः** संविधान का निर्माण केवल असाधारण काल के लिये नहीं किया जाता है, वह भावी अनेकानेक वर्षों के लिये बनाया जाता है।

***डा. पी.एस. देशमुखः** श्रीमान्, मुझे विश्वास है कि इस संविधान में जो उपबंध हैं वे ऐसे हैं कि सामान्य परिस्थितियों में भी उनके दुरुपयोग किये जाने की सम्भावना नहीं है। पंडित कुंजरू ने कहा था कि भारतीय सरकार के सन् 1935 ई. के अधिनियम में यह अंग्रेजी सरकार के हित के लिये था, कि इस प्रकार की धारा रखी गई थी क्योंकि उस समय सरकार उत्तरदायित्वपूर्ण नहीं थी। परन्तु जबकि सरकार पर विधान-मंडल का उत्तरदायित्व है तो उसके दुरुपयोग किये जाने का डर ही नहीं है। मैं समझता हूं कि पंडित कुंजरू ने स्वयं ही अपने तर्क का उत्तर दे दिया है। मुझे विश्वास है कि कोई भी राष्ट्रपति मंत्रिमंडल की सम्मति के बिना कार्य नहीं करेगा और कोई भी मंत्रिमंडल सदन के सदस्यों के बहुमत की सम्मति के बिना कार्य नहीं करेगा। अतः इस धारा के अन्तर्गत राष्ट्रपति द्वारा यदि किसी शक्ति के प्रयोग में लाने की सम्भावना है तो उसे विधान-मंडल की स्पष्ट स्वीकृति तथा सम्मति प्राप्त होगी और इस कारण मैं समझता हूं कि सरदार हुकुमसिंह का संशोधन भी आवश्यक नहीं है। कोई भी राष्ट्रपति पद धारण किये नहीं रह सकता है यदि वह ऐसे अध्यादेश निकालेगा जिनको मंत्रिमंडल की तथा अन्ततः विधानमंडल की सम्मति प्राप्त नहीं है। अतः श्रीमान्, मैं समझता हूं कि जो रक्षा-कवच सुझाये गये हैं उनकी कोई आवश्यकता नहीं है। जबकि अध्याादेश को वापस करने की शक्ति राष्ट्रपति को दे दी गई है तो संवैधानिक प्रमुख होने के नाते—लोक-संरक्षण होने के नाते वह किसी विधायी साधन की, जितने समय के लिये वह नितान्त आवश्यक है उससे एक दिन अधिक तक के लिये अनुज्ञा नहीं देगा।

तत्पश्चात्, श्रीमान्, पेश किये गये अपने संशोधन के परिणामस्वरूप पंडित कुंजरू व्याख्याओं को हटाना चाहते हैं। वास्तव में श्रीमान्, व्याख्यायें दो नहीं हैं। केवल एक ही व्याख्या है। मेरे अभिप्राय से इस अनुच्छेद का तीसरा उपखंड भी एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण उपबंध है। यह इस प्रकार हैः

> ''If and so far as an Ordinance under this article makes any provision which Parliament would not under this Constitution be competent to enact., it shall be void.''

[डा. पी.एस. देशमुख]

मैं समझता हूं कि इस उपबंध से श्री पोकर साहिब भी संतुष्ट हो जायेंगे क्योंकि राष्ट्रपति द्वारा प्रयुक्त कोई विधायी शक्ति यदि किसी भी मूलाधिकार के विरुद्ध जाती है तो वास्तव में उस सीमा तक वह शून्य हो जायेगा और उसका कुछ भी अर्थ नहीं होगा।

इन सब परिस्थितियों में श्रीमान्, मैं नहीं समझता हूं कि जो संशोधन पेश किये गये हैं उनमें से किसी की भी आवश्यकता हो। मैं समझता हूं कि जो समय यहां दिया गया है वह सम्भवतः पर्याप्त होगा। परन्तु फिर भी यदि डा. अम्बेडकर यह अनुभव करते हैं कि जो तर्क प्रस्तुत किये गये हैं उनसे वे सन्तुष्ट हैं और तीस दिन की उल्लिखित अवधि के अन्दर संसद को तुरन्त बुलाने का उपबंध बनाना चाहते हैं तो मुझे कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये, पर श्रीमान्, मैं यह समझता हूं कि राष्ट्रपति को जो विधायी शक्ति दी गई हैं उनके दुरुपयोग किये जाने की सम्भावना नहीं है और जिस प्रकार की शक्तियां इस अनुच्छेद में उल्लिखित हैं वे आवश्यक हैं।

***श्री तजम्मुल हुसैनः** श्रीमान्, सर्वप्रथम मुझे संशोधन संख्या 1802 को लेना चाहिये जो मेरे माननीय मित्र पंडित कुंजरू द्वारा पेश किया गया है। श्रीमान्, खंड (2) के उपखंड (क) में यह कहा गया है कि प्रत्येक अध्यादेश संसद के समक्ष रखा जायेगा और संसद के पुनः अधिवेष्टित होने से छः सप्ताह की समाप्ति पर प्रभावशून्य हो जायेगा इत्यादि, इत्यादि। मेरे माननीय मित्र पंडित कुंजरू कहते हैं कि अध्यादेश के प्रख्यापन करने से तीस दिन की समाप्ति पर वह प्रभावशून्य हो जाये। श्रीमान्, मैं निवेदन करता हूं कि मैं इसे समझने में असमर्थ हूं। केवल आपातिक स्थिति में ही अध्यादेश प्रख्यापित किये जाते हैं। मान लीजिये कि आपात ऐसा है कि वह तीस दिन से अधिक रहे तो उस दशा में हम क्या करें?

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, माननीय सदस्य ने पंडित कुंजरू के संशोधन को ठीक-ठीक नहीं समझा है।

***श्री तजम्मुल हुसैनः** श्रीमान्, जिस समय पंडित कुंजरू ने यह संशोधन पेश किया था मैं यहां पर नहीं था। पर उनके संशोधन से यह स्पष्ट है कि वे यह चाहते हैं कि अध्यादेश प्रख्यापन करने के समय से तीस दिन की समाप्ति पर वह प्रभावशून्य हो जाये। यदि यही बात है तो मैं आपके समक्ष एक उदाहरण रखूंगा। मान लीजिये कि साधारण निर्वाचन के लिये लोक सभा का आज विघटन हो जाता है। दूसरे दिन आपात उत्पन्न हो जाता है और संघ का राष्ट्रपति अध्यादेश प्रख्यापित करता है। तो आप क्या करेंगे? सदस्य तो हैं ही नहीं। आप किस प्रकार पुनः संसद बुलायेंगे? मैं संशोधन का विरोध करता हूं।

अब मुझे श्री पोकर द्वारा पेश किये गये संशोधन संख्या 1796 को लेने दीजिये। वे कहते हैं 'Provided that such ordinance shall not deprive any citizen of his right to personal liberty except on conviction after trial by a competent court of law' इसे मैं नहीं समझ सकता हूं। यह एक असामान्य कार्यप्रणाली है। अध्यादेश का

अर्थ है एक असामान्य कार्यप्रणाली। ऐसे आपात में दैहिक स्वातन्त्र्य का प्रश्न ही नहीं उठता। हम नहीं जानते कि उस समय क्या होगा। अतः उनके संशोधन का भी विरोध होना चाहिये।

सरदार हुकुमसिंह द्वारा पेश किये गये संशोधन में यह कहा गया है कि जब कोई अध्यादेश प्रख्यापित किया जाता है, तो मंत्रि-परिषद् से पहले ही परामर्श कर लेना चाहिये। यह बहुत ही युक्तियुक्त है। हमें इसका समर्थन करना चाहिये। आखिरकार प्रधानमंत्री तथा मंत्रिमंडल जनता के मुख्य प्रतिनिधि ही है। इसमें भी सन्देह नहीं कि राष्ट्रपति भी समस्त संघ का प्रतिनिधान करता है। परन्तु मैं समझता हूं कि प्रधानमंत्री और उसका मंत्रिमंडल अधिक उत्तरदायित्वपूर्ण है और अध्यादेश प्रख्यापित करने के पूर्व उनसे परामर्श करना चाहिये। इसलिये मैं इस संशोधन का समर्थन करता हूं।

***मि. महबूब अली बेग साहिबः** (मद्रास : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, पंडित कुंजरू द्वारा पेश किये गये संशोधन से तथा श्री पोकर द्वारा पेश किये गये संशोधन से भी मैं पूर्णतया सहमत हूं। सर्वप्रथम मैं पंडित कुंजरू द्वारा पेश किये गये संशोधन पर बोलूंगा। मैं समझता हूं कि मेरे मित्र डा. अम्बेडकर के लिये इस संशोधन को स्वीकार करना संभव होना चाहिये। पंडित कुंजरू ने यह स्पष्ट बता दिया कि अध्यादेश द्वारा शासन छः माह तक तथा छः सप्ताह से ऊपर छः माह तक रह सकता है। तो प्रश्न यह है कि क्या यह वांछनीय है कि गणतंत्र में, जिसमें देश के लोकप्रतिनिधि उपस्थित हैं जिनको अल्पकालीन सूचना द्वारा आहूत किया जा सकता है, आप संसद आमंत्रित करने को स्थगित करने का अवसर कार्यपालिका को दें, जिसके लिये कि कार्यपालिका को छः मास और छः सप्ताह तक के लिये अधिकार मिल जाता है। मैं निवेदन करता हूं कि यह गणतंत्र विरोधी है और कम से कम इससे कार्यपालिका द्वारा दमन किया जा सकेगा। आजकल मैं मंत्रिमंडल के सदस्यों की यह प्रवृत्ति देखता हूं कि वे ऐसा विधान प्रस्तुत करते हैं अथवा संविधान में ऐसी प्रस्थापना रखते हैं, जो स्वयं वर्तमान आशंकाओं पर आश्रित होती है। शक्ति प्राप्त सरकार अथवा जिन व्यक्तियों पर इन विषयों का प्रभाव रहता है, वे समझते हैं कि सदैव तनाव बना रहता है और उसके लिये किसी भी घटना का सामना करने की कार्यपालिका शक्ति देने वाले उपबंध बनने चाहियें। ठीक है, किसी घटना के उत्पन्न होते ही उस स्थिति का सामना करने के लिये कार्यपालिका को शक्ति देने के लिये हम उद्यत हैं। जबकि एक सप्ताह अथवा दस दिन में ससंद बुलाई जा सकती हे, तो मैं कोई कारण नहीं समझ पाता कि हम यह निश्चित करने के लिये कि प्रख्यापित अध्यादेश बना रहे या नहीं, संसद आमंत्रित करने में देर करने का अवसर क्यों दें। यह संकट से परिपूर्ण है और ऐसे अवसर हैं कि कार्यपालिका अन्यायपूर्वक स्वयं शक्तियां ग्रहण कर ले और संसद के बुलाने के स्थगित करने के लिये प्रलोभित हो। अतः श्रीमान्, गणतंत्रीय बुद्धि वाले डा. अम्बेडकर पंडित कुंजरू के संशोधन में निहित सुझाव को स्वीकार कर सकेंगे।

श्री पोकर के संशोधन के सम्बन्ध में मैं उस वाद-विवाद को पुनः जाग्रत नहीं करना चाहता हूं, जो अनुच्छेद 15 पर विचार-विमर्श करते समय उत्पन्न हुआ था। उस समय यह नियम-विरुद्ध घोषित किया जा चुका था कि दैहिक स्वातन्त्र्य की रक्षा विधि द्वारा अर्थात् संसद द्वारा निर्धारित कार्यप्रणाली के अनुसार हो सकती है। हम उसे पारित कर

[मि. महबूब अली बेग साहिब]

चुके हैं। परन्तु यहां हम राष्ट्रपति के मनमाने नियम से भी चाहे वह छः मास के लिये हो चाहे दो मास के लिये, लोगों की स्वतंत्रता की रक्षा क्यों न करें? अनुच्छेद 15 का औचित्य, जो हम पारित कर चुके हैं, यह है कि कार्यप्रणाली के सम्बन्ध में ससंद को विधान बनाना है। कुछ विषयों के सम्बन्ध में कार्यप्रणाली संसद को ही निर्धारित करनी है। उदाहरणार्थ, जब किसी व्यक्ति को, बिना मुकदमा चलाये, उसके स्वातन्त्र्य से वंचित किया जाता है तो उसे संसद द्वारा निर्धारित कार्यप्रणाली के अनुसार जेल में बन्द किया जा सकता है। परन्तु एक ही व्यक्ति को अर्थात् राष्ट्रपति को क्यों अध्यादेश पारित करने दिया जाये, जिसके द्वारा वह किसी व्यक्ति को न्यायालय द्वारा उस पर मुकदमा चलाये बिना ही उसकी स्वतंत्रता से वंचित कर दे? इस कारण में इस संशोधन का समर्थन करता हूं। मैं समझता हूं कि डा. अम्बेउकर को यह संशोधन स्वीकार कर लेना चाहिये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** अध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद 102 में दिये हुये उपबंधों पर मेरे मित्र पंडित कुंजरू ने कुछ मौलिक आपत्तियां उठाई हैं। अपने भाषण में उन्हीं ने यह कहा था कि हम सचमुच भारतीय सरकार के सन् 1935 के अधिनियम में दिये हुये उपबंधों को पुनः रख रहे हैं। जिनकी देश के सभी दलों ने निन्दा की थी। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे मित्र पंडित कुंजरू को यह याद नहीं रहा कि भारतीय सरकार के 1935 के अधिनियमों में दो भिन्न-भिन्न उपबंध हैं। उपबंधों की एक श्रेणी भारतीय सरकार के उस अधिनियम की 42 धारा में है और दूसरी श्रेणी 43 धारा में है। धारा 43 में दिये हुये उपबंध गवर्नर जनरल को वे अध्यादेश प्रख्यापित करने की शक्ति प्रदान करते थे, जिनको वह अपने उन प्रकार्यों के पालन करने में आवश्यक समझता था जो विधान द्वारा उसको सौंपे गये थे और जिनका अपने स्वविवेक अथवा वैयक्तिक निर्णय के अनुसार पालन करना उसके लिये अपेक्षित था। उन अध्यादेशों से जिनको धारा 43 के अन्तर्गत प्रख्यापित करने की शक्ति गवर्नर जनरल को थी, विधान-मंडल पूर्णतया पृथक कर दिया गया था। वह जो कुछ चाहे कर सकता था जिसको वह अपने विशेष प्रकार्यों के पालन करने में आवश्यक समझता था। दूसरी बात यह है कि गवर्नर जनरल द्वारा धारा 43 के अन्तर्गत प्रख्यापित अध्यादेश उस समय भी प्रख्यापित किया जा सकता है, जब विधान-मंडल का अधिवेशन हो रहा हो। धारा 43 के उपबंधों के अधीन वह एक समान विधायी प्राधिकारी था। यह स्पष्ट हो गया होगा कि वर्तमान अनुच्छेद 102 में उन उपबंधों में से कोई उपबंध नहीं है जो भारतीय सरकार के अधिनियम में धारा 43 में दिये हुये हैं। अतः राष्ट्रपति को विधान की वे स्वतंत्र शक्ति नहीं है, जो धारा 43 के अधीन गवर्नर जनरल को थीं। उसकी इस धारा के अन्तर्गत अध्यादेश प्रख्यापित करने का अधिकार नहीं है जबकि विधान मंडल का अधिवेशन हो रहा हो। हम केवल यही कर रहे हैं कि गवर्नर जनरल को धारा 42 के अन्तर्गत जो शक्तियां दी गई थीं, उनको अनुच्छेद 102 के अन्तर्गत राष्ट्रपति के लिये बनाये रखें। वे उस अवधि से सम्बन्ध रखती हैं, जबकि विधान मंडल का अवकाश हो और अधिवेशन न हो। और केवल उसी समय तक अनुच्छेद 102 में दिये गये उपबंध प्रयोग में लाये जा सकते हैं। अनुच्छेद 102 में दिये हुये उपबंध राष्ट्रपति को कोई ऐसी शक्ति प्रदान नहीं करते हैं, जो केन्द्रीय विधानमंडल को स्वयं प्राप्त न हो, क्योंकि उन पर कोई विशिष्ट उत्तरदायित्व नहीं है, उनको कोई स्वविवेक नहीं है और उनका कोई वैयक्तिक निर्णय नहीं है। अतः मेरा निवेदन यह है कि जो तर्क मेरे मित्र

पंडित कुंजरू ने प्रस्तुत किया है, वह अनुच्छेद 102 के उपबंधों के बहुत कुछ परे है। मैं तो यह कहूंगा कि यह अनुच्छेद कुछ-कुछ ब्रिटिश इमर्जेंसी पावर्स एक्ट 1920 के प्रावधानों के अनुरूप है—मैं बहुत ही संयत भाषा का प्रयोग कर रहा हूं इस अधिनियम के अन्तर्गत भी बादशाह को उद्घोषणा निकालने का अधिकार है और जब कोई उद्घोषणा निकाल दी जाती थी, तो कार्यपालिका को किसी विषय पर विचार करने के लिये विनियम बनाने का अधिकार था और जब संसद का सत्र नहीं होता था तब ऐसा करने की अनुज्ञा थी। सदन के समक्ष मेरा निवेदन यह है कि उन दशाओं की कल्पना करना कठिन नहीं है, जिनमें किसी विशिष्ट काल में वर्तमान साधारण विधि द्वारा प्रदत्त शक्तियां उस परिस्थिति का सामना करने में क्षीण हो जाती हैं, जो एकदम अचानक उत्पन्न हो जाती हैं। कार्यपालिका को क्या करना है? कार्यपालिका के सामने एक नई परिस्थिति है जिस पर उसे विचार करना है। अनुमानत: वर्तमान विधिसंहिता में उस पर विचार करने की उसे शक्ति प्राप्त नहीं है। आपात का निराकरण होना ही चाहिये और मुझे यह प्रतीत होता है कि इसका एक मात्र हल यही है कि राष्ट्रपति को एक विधि प्रख्यापित करने की शक्ति सौंपी जाये, जिसके द्वारा कार्यपालिका उस विशिष्ट-परिस्थिति का सामना कर सके, क्योंकि वह विधि की सामान्य कार्यप्रणाली का आश्रय नहीं ले सकती है; चूंकि अनुमानत: विधानमंडल का सत्र नहीं हो रहा है। अत: मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मुख्यत: अनुच्छेद 102 में दिये हुये उपबंधों पर कोई आपत्ति नहीं है।

यह संकेत मेरे मित्र श्री पोकर ने अपने संशोधन संख्या 1796 में किया था, जिसके द्वारा उन्होंने इस बात पर जोर दिया था कि सिवाय सक्षम न्यायालय द्वारा मुकदमें के पश्चात् दोष सिद्ध हो जाने के किसी ऐसे अध्यादेश द्वारा किसी नागरिक को वैयक्तिक स्वातन्त्र्य के अपने मूलाधिकार से वंचित नहीं करना चाहिये। जहां तक उनके संशोधन का सम्बन्ध है, मैं समझता हूं कि उन्होंने अनुच्छेद 102 के खंड (3) को नहीं पढ़ा है। अनुच्छेद 102 के खंड (3) में यह निर्धारित किया गया है कि अनुच्छेद 102 के उपबंधों के अंतर्गत राष्ट्रपति द्वारा बनाई गई विधि में वे ही परिसीमाएं होंगी, जो विधान-मण्डल द्वारा सामान्य रीति से बनाई गई विधि में होती है। विधानमंडल द्वारा सामान्य रीति से बनाई गई विधि उन उपबंधों के अधीन रहती है जो इस संविधान के प्रारूप के मूलाधिकार के अनुच्छेदों में दिये हुये हैं। ऐसा होने पर अनुच्छेद 102 के उपबंधों के अन्तर्गत बनी हुई कोई विधि अपने आप ही नागरिकों के मूलाधिकारों से सम्बन्धित प्रावधानों के अधीन हो ही जायेगी और इस कारण ऐसी कोई विधि उन उपबंधों का अतिक्रमण नहीं कर सकेगी तथा किसी ऐसे उपबंध की आवश्यकता नहीं होगी, जो मेरे मित्र श्री पोकर ने अपने संशोधन संख्या 1796 में सुझाया है।

मेरे मित्र श्री कामत द्वारा सुझाया गया संशोधन अर्थात् संशोधन संख्या 1798 मुझे तो आशयहीन सा प्रतीत होता है। मान लीजिये एक सदन का सत्र है और दूसरे का नहीं है। जैसा कि मैंने कहा है यदि ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है, तो अनुच्छेद 102 के प्रावधान आवश्यक हैं, क्योंकि इस संविधान के अनुसार किसी एक सदन द्वारा कोई विधि पारित नहीं की जा सकती है। विधान में दोनों सदनों को भाग लेना चाहिये। अत: एक सदन की उपस्थिति वास्तव में इस परिस्थिति की पूर्ति नहीं करती है।

श्री एच.वी. कामतः क्या इसका आशय यह है कि जब एक ही सदन सत्र में हो, मान लीजिये कि लोक सभा सत्र में हो, तो भी राष्ट्रपति को यह शक्ति होगी?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** जी हां, इस शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है। क्योंकि सामान्य रीति से विधि पारित करने का ढांचा ही वर्तमान नहीं है।

***श्री एच.वी. कामतः** तब तो मैं कहूंगा कि यह लज्जाजनक है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** अब मैं अपने मित्र श्री कुंजरू द्वारा अपने संशोधन संख्या 1802 में उठाये गये अन्य प्रश्न पर आता हूं। उनका सुझाव है कि अनुच्छेद 102 के अन्तर्गत राष्ट्रपति द्वारा अधिनियमित किया गया विधान अध्यादेश के प्रख्यापन करने से तीस दिन के पश्चात् अपने आप समाप्त हो जायेगा। अनुच्छेद के प्रारूप में यह उपबंध है कि संसद की बैठक से छः सप्ताह तक वह बना रहेगा। मेरे मित्र पंडित कुंजरू ने क्यों इस संशोधन को प्रस्तुत किया है इसका कारण यह है: वे कहते हैं कि अनुच्छेद के मसौदे में दिये हुये प्रावधानों के अन्तर्गत छः सप्ताह से भी अधिक समय व्यतीत हो सकता है, क्योंकि वे समझते हैं कि कार्यपालिका संसद आहूत करने में एक या दो मास लगा सकती है। मान लीजिये संसद चार मास में आहूत की जाती है तो छः सप्ताह भी और होने चाहियें—यह तो व्यवहार्य है अथवा इससे भी अधिक समय लग सकता है, यदि कार्यपालिका संसद आहूत करने में देर कर दे। मैं यह नहीं जानता हूं कि वास्तव में क्या होगा, पर मेरा विचार यह है कि जो भय मेरे माननीय मित्र कुंजरू को है वह भय वास्तव में निराधार है, क्योंकि अनुच्छेद 69 में हमने व्यवस्था कर दी है, जिसमें यह कहा गया है कि संसद के दो सत्रों में परस्पर छः मास का अन्तर न होगा, और मुझे विश्वास है कि संसदीय कार्यवाहियों की आवश्यकता के कारण जितने सत्रों की वर्तमान समय में माननीय सदस्य सोच रहे हैं उससे संसद के अधिक सत्र होंगे। अतः मैं कहता हूं कि अनुच्छेद 69 पर विचार करते हुये, कार्यवाहियों की आवश्यकता पर ध्यान देते हुये तथा संसद का विश्वास बनाये रखने हेतु सरकार की आवश्यकता को सोचते हुये मैं नहीं समझता हूं कि तत्कालीन कार्यपालिका द्वारा कोई ऐसी विलम्बकारी रीति मानने दी जायेगी जिससे अनुच्छेद 102 के अंतर्गत प्रख्यापित अध्यादेश अनुचित रूप से एक दीर्घकाल तक प्रवर्तित बना रहे। अतः मैं सोचता हूं कि जिस रूप में अनुच्छेद के प्रारूप में उपबंध हैं, उनको उसी रूप में रहने दिया जाये।

***श्री एच.वी. कामतः** अध्यक्ष महोदय, श्रीमान्, क्या मैं एक अन्तिम प्रश्न पूछ सकता हूं? क्या यह हमारे विचारों के अथवा स्वतंत्रता तथा जनतंत्र की विचारधारा के—और मैं समझता हूं कि ऐसे ही विचार डा. अम्बेडकर के हैं—विरुद्ध नहीं हैं कि इस अनुच्छेद में अध्यादेश का अधिकतम काल न रखा जाये?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मेरे निजी विचार ये हैं कि जो विरोध की भावना मेरे माननीय मित्र श्री कामत तथा मेरे माननीय मित्र श्री कुंजरू ने भी प्रकट की है, उसका साकार कारण इस अध्याय के अभागे शीर्षक ''राष्ट्रपति की विधायी शक्तियां'' से उत्पन्न होता है। यह शीर्षक होना चाहिये था ''संसद के सत्र में न होने पर विधान बनाने की शक्ति''। मैं समझता हूं कि यदि इस प्रकार का सीधा सा शीर्षक इस अध्याय को दे

दिया जाता, तो इस उपबंध पर बहुत सा विरोध दब जाता। यह ठीक है कि 'अध्यादेश' शब्द बुरा है, परन्तु यदि श्री कामत अपनी कुशाग्र बुद्धि से कोई अच्छा शब्द सुझा सकते हैं तो सर्वप्रथम मैं उसे स्वीकार करूंगा। 'अध्यादेश' शब्द को मैं पसन्द नहीं करता हूं पर उसके स्थान में कोई अन्य शब्द मैं नहीं सोच सकता हूं।

***अध्यक्षः** एक और संशोधन है जिसे सरदार हुकुमसिंह ने पेश किया है और जिसमें वे कहते हैं कि राष्ट्रपति अपनी मंत्रिपरिषद् से परामर्श करने के पश्चात् अध्यादेश प्रख्यापित कर सकता है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** इसके सम्बन्ध में याद दिलाने के प्रति मैं आपका बड़ा कृतज्ञ हूं। बात यह है कि वह संशोधन अनावश्यक है क्योंकि राष्ट्रपति बिना मंत्रियों की मंत्रणा के न तो कार्य करेगा और न कर सकता है।

***अध्यक्षः** विधान के प्रारूप में ऐसा उपबंध कहां है, जो राष्ट्रपति को मंत्रियों की मंत्रणा के अनुसार कार्य करने के लिये बाध्य करता हो?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मुझे विश्वास है कि ऐसा उपबंध है और वह उपबंध यह है कि अपने कार्यों के पालन करने में राष्ट्रपति को सहायता तथा मंत्रणा देने के लिये एक मंत्रिपरिषद् होगी।

***अध्यक्षः** चूंकि हम एक लिखित संविधान बना रहे हैं, हमें इस बात को कहीं स्पष्ट रूप में रखना चाहिये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** यद्यपि इस समय मैं उसे बता नहीं सकता हूं, पर मुझे विश्वास है कि ऐसा उपबंध है। मैं समझता हूं कि ऐसा एक उपबंध है कि राष्ट्रपति मंत्रियों की मंत्रणा स्वीकार करने के लिये बाध्य है। वास्तव में अपने मंत्रियों की मंत्रणा के बिना वह कार्य नहीं कर सकता है।

***कुछ माननीय सदस्यः** अनुच्छेद 61 (1)।

***अध्यक्षः** उसमें केवल मंत्रियों के कर्त्तव्य निर्धारित हैं, पर उसमें यह नहीं दिया गया है कि यह राष्ट्रपति का कर्त्तव्य है कि वह मंत्रियों द्वारा दी गई मंत्रणा के अनुसार कार्य करे। उसमें यह नहीं दिया गया है कि उस मंत्रणा को स्वीकार करने के लिये राष्ट्रपति बाध्य है। क्या संविधान में कोई और उपबंध है? यदि कोई उपबंध नहीं है तो हम उस पर महाभियोग भी नहीं चला सकेंगे, क्योंकि इस कार्य में वह संविधान का अतिक्रमण तो करेगा ही नहीं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** क्या मैं आपका ध्यान अनुच्छेद 61 की ओर आकर्षित करूं, जो राष्ट्रपति के कार्य निर्वहन के सम्बन्ध में है। जब तक उसे अपने ''कार्य निर्वहन के लिये'' मंत्रणा नहीं मिली है, तब तक वह अपने किसी कृत्य का निर्वहन नहीं कर सकता है। यह केवल ''सहायता तथा मंत्रणा देना'' ही नहीं है। ''अपने कार्य निर्वहन'' में ये बहुत ही महत्त्वपूर्ण शब्द हैं।

***अध्यक्ष:** मुझे संदेह है कि ये शब्द राष्ट्रपति को बाध्य कर भी सकेंगे। उसमें केवल यही दिया गया है कि राष्ट्रपति के कृत्य प्रयोग में उसको सहायता तथा मंत्रणा देने के लिये एक मंत्रिपरिषद् होगी, जिसका मुखिया प्रधानमंत्री होगा। इसमें यह नहीं कहा गया है कि राष्ट्रपति उस मंत्रणा को मानने के लिये बाध्य होगा।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** यदि तत्कालीन मंत्रिमंडल की मंत्रणा वह स्वीकार नहीं करता है, तो मंत्रणा प्राप्त करने के लिये उसे मंत्रियों का कोई और निकाय बनाना पड़ेगा। मंत्रियों से स्वतंत्र होकर वह कार्य नहीं कर सकेगा।

***अध्यक्ष:** कहीं इस बात की व्यवस्था करने में कि राष्ट्रपति मंत्रियों की मंत्रणा मानने के लिये बाध्य होगा, कोई वास्तविक कठिनाई है?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** हम ऐसी व्यवस्था कर रहे हैं। यदि मैं यह कह सकता हूं तो प्रवेश-लिखित में ऐसा एक उपबंध है।

***अध्यक्ष:** मैंने उस पर भी विचार कर लिया है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** कंडिका 3 इस प्रकार है: संघ की कार्यपालिका शक्ति के अंतर्गत सब विषयों में प्रदत्त शक्तियों को प्रयोग में लाने के लिये राष्ट्रपति अपने मंत्रियों की मंत्रणा का अनुसरण करेगा। इसमें हम कुछ संशोधन प्रस्तावित करना चाहते हैं।

***अध्यक्ष:** आप इसमें परिवर्तन करना चाहते हैं। जिस रूप में वह है उसमें यह दिया गया है कि संघ की कार्यपालिका शक्ति के प्रयोग करने में राष्ट्रपति को मंत्री मार्ग प्रदर्शन करेंगे, न कि विधायी शक्ति में।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** अनुच्छेद 61 अनेकों अन्य विधानों में लगभग अक्षरश: इसी प्रकार है और राष्ट्रपतियों ने सदैव यही समझा है कि इस भाषा का यही अर्थ है कि वे उस मंत्रणा को स्वीकार करें। यदि कोई कठिनाई है, तो उपयुक्त संशोधन द्वारा उसको अवश्य दूर किया जायेगा।

***श्री एच.वी. कामत:** अध्यादेश के अधिकतम काल के विषय पर जो साढ़े सात मास तक बढ़ाया जा सकता है आप इस अनुच्छेद को खामोश छोड़ देंगे। यह असम्भव है।

***अध्यक्ष:** क्या अपने संशोधन पर श्री कामत दूसरा भाषण देने जा रहे हैं?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** संयुक्त राज्य अमरीका के राष्ट्रपति से हमारे राष्ट्रपति सर्वथा भिन्न हैं।

***श्री एच.वी. कामत:** मैं केवल यह कहना चाहता हूं कि इस अनुच्छेद की रचना करने में हम ब्रिटिश शासन से भी एक कदम आगे बढ़ गये हैं और ये बहुत ही भयानक स्थिति है।

***अध्यक्ष:** आप अपना भाषण दे चुके हैं। मैं नहीं समझता हूं कि इस समय आपको यह बात कहने का अधिकार है। अब मैं संशोधनों पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 102 के खंड (1) में 'when both houses' शब्दों के स्थान में 'when one or both Houses' और 'such Ordinances' शब्दों के स्थान में 'such Ordinance or Ordinances' शब्द रखे जायें।''

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 102 के खंड (1) में 'except when both Houses of Parliament are in session' शब्दों के पश्चात् 'after consultation with his Council of Ministers' शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 102 के खंड (1) पर निम्न परन्तुक लगाया जाये:

'Provided that such ordinance shall not deprive any citizen of his right to personal liberty except on conviction after trial by a competent court of law.' ''

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 102 के खंड (2) के उपखंड (क) में 'both Houses of Parliament' शब्दों के पश्चात् 'within four weeks of promulgation' शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 102 के खंड (2) के उपखंड (क) में 'six weeks from the re-assembly of Parliament' शब्दों के स्थान में 'thirty days from the promulgation of any Ordinance' शब्द रखे जायें'' और ''कि अनुच्छेद 102 के खंड (2) की व्याख्या निकाल दी जाये।''

संशोधन अस्वीकार किये गये।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 102 के खंड (2) के उपखंड (क) में 'Parliament' शब्द के पश्चात् जहां कि वह प्रथम बार आता है 'immediately after each House assembles' शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें; जहां 'and' शब्द प्रथम बार आता है, उसके पश्चात् 'unless approved by either House of Parliament by specific Resolution' शब्द तथा 'operate' शब्द के पश्चात् 'forthwith' शब्द प्रविष्ट किये जायें और 'at the expiration of six weeks from the re-assembly of Parliament, or if before the expiration of that period resolutions disapproving it are passed by both Houses, upon the passing of the second of those resolutions' शब्द निकाल दिये जायें।''

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** मैं समझता हूं कि ये ही सब संशोधन हैं।

प्रस्ताव यह है:

'कि अनुच्छेद 102 संविधान का अंग बने।'

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 102 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अध्याय 4

***अध्यक्षः** एक संशोधन है, जिसकी मेरे पास सूचना है कि एक नया अनुच्छेद 102 (क) प्रविष्ट किया जाये। हम उसे लेंगे।

इस अध्याय के शीर्षक पर एक संशोधन है।

इस अध्याय को संख्यांकित करने के बारे में श्री नजीरुद्दीन अहमद का संशोधन संख्या 1809। मैं नहीं समझता हूं कि उसको लेना आवश्यक है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि भाग 5 के अध्याय 4 के शीर्षक में 'Federal Judicature' शब्दों के स्थान में 'Union Judiciary' शब्द रखे जायें।''

यह केवल उस पूर्ववर्ती अनुच्छेद का आनुषंगिक मात्र है जिसमें भारत का संघ के रूप में वर्णन किया गया है।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

''कि भाग 5 के अध्याय 4 के शीर्षक में 'Federal Judicature' शब्दों के स्थान में 'Union Judiciary' शब्द रखे जायें।''

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** श्री गुप्ता का संशोधन पूर्ववर्ती संशोधन के समान ही है।

नया अनुच्छेद 102-क

***प्रो. के.टी. शाहः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि भाग 5 अध्याय 4 में निम्न नवीन अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये:

'102-क इस संविधान के अधीन भारत में न्यायपालिका कार्यपालिका अथवा विधानमंडल से पूर्णतया पृथक् तथा सर्वथा स्वतंत्र होगी।' ''

श्रीमान्, संविधान निर्माण में यह संशोधन एक बड़े ही महत्त्वपूर्ण सिद्धांत की व्याख्या करता है, जिस पर मैं अनेक विभिन्न दृष्टिकोणों से आग्रह कर चुका हूं, परन्तु जिस पर मैं इस समय इस दृष्टिकोण से इस आशा में जोर देना चाहूंगा कि कम से कम न्यायपालिका के लिये स्वतंत्रता प्राप्त करने हेतु यह संशोधन सदन को स्वीकार होगा।

श्रीमान्, शक्तियों के पृथक्करण का सिद्धांत बहुत से देशों में प्रजातंत्रीय सरकार की आधारशिला के रूप में समझा जाता है। दुर्भाग्यवश इस महत्त्वपूर्ण सिद्धांत के प्रति अन्य अवसरों पर मैं सदन को विश्वास नहीं करा सका, जब मैंने या तो सामान्य रूप में या विधानमंडल को कार्यपालिका से स्वतंत्र रहने के तथा कार्यपालिका को विधानमंडल से स्वतंत्र रहने के लिये इसकी व्याख्या की थी। खैर, न्यायपालिका के सम्बन्ध में मैं निवेदन करता हूं कि यह सिद्धांत अपेक्षाकृत किसी अन्य स्थल के यहां अधिक महत्त्वपूर्ण है। इस देश में लोकप्रिय आन्दोलन का इतिहास आरम्भ से ही इस मांग से युक्त रहा है कि कम से कम न्यायपालिका कार्यपालिका से पृथक् तथा पूर्णतया स्वतंत्र रहनी चाहिये। पूर्ववर्ती सरकार की एक विशेषता यह थी कि न्यायिक संगठन की मात्रा में एक यथेष्ट स्थिति तक न्यायपालिका की तथा कार्यपालिका की शक्तियां एक ही पदाधिकारी में निहित कर दी जाती थीं। यह एक ऐसी स्थिति थी जिसका अपवाद उसी समय से किया गया था, जब से कि इस देश में प्रजातंत्रीय आन्दोलन आरम्भ हुआ।

यद्यपि जितने पूर्णरूप में मैं चाहता हूं, उतने पूर्णरूप में इस संविधान में यह अभी तक स्वीकार नहीं हो पाया है, पर मुझे विश्वास है कि सैद्धांतिक रूप में इस सदन का बहुमत इस बात पर आपत्ति नहीं करता है। मैंने इसे बहुत ही व्यापक बना दिया है। इस संशोधन में केवल न्यायपालिका का कार्यपालिका से पृथक्करण ही नहीं है, वरन् उसकी स्वतंत्रता भी है तथा मैं उसे विधानमंडल तथा कार्यपालिका से भी पृथक् रखना चाहता हूं।

मैं समझता हूं कि विधानमंडल में न्यायिक वर्ग की उपस्थिति से न तो कोई लाभ है और न वह किसी रूप में विधानमंडल के अथवा स्वयं न्यायाधीशों के लिये ही सहायक

[प्रो. के.टी. शाह]

है, इस रूप में कि यदि न्यायाधीश विधानमंडल के सदस्य हैं, तो उन पर उस वाद-विवाद तथा कार्यवाहियों का प्रभाव पड़ सकता है, जो उस विधिनिर्माण में हुई थी और यदि किसी खास मुकदमे में उस विधि का प्रयोग आ जाता है, तो वे स्वयं उस विधि के शाब्दिक अर्थ का पूर्ण प्रयोग नहीं कर सकेंगे। न्याय-प्रशासन सम्बन्धी यह एक बड़ा ही पुष्ट सिद्धांत माना जा चुका है कि विधानमंडल में उस विधि के पारित करते समय जो कुछ हुआ उससे न्यायाधीशों का कोई भी सम्बन्ध नहीं रहता है और उस निकाय में उस विधि पर विचार-विमर्श करते समय जो तर्क उठाये गये अथवा जो बातें कही गईं उनका न्यायाधीशों पर कोई प्रभाव नहीं होना चाहिये। उन्हें तो अपने आप को केवल विधानमंडल के अन्तिम अधिनियम तक ही, जैसी कि उसकी शब्दावलि है, सीमित रखना चाहिये और जब कभी कोई विषय उनके सम्मुख आता है, जिसमें उस विधि का प्रयोग निहित है, तो उस विधि की व्याख्या करने के लिये वे ही सर्वोच्च प्राधिकारी हैं।

मैं समझता हूं कि यही एक सुदृढ़ स्थिति है, जिस पर इस विधान में सामान्यत: जोर देना चाहिये। अत: यह मेरे संशोधन के उस भाग के सम्बन्ध में है, जो न्यायपालिका को विधानमंडल से पृथक् तथा स्वतंत्र रखने के सम्बन्ध में है।

व्यवहार विषयक स्वातन्त्र्य तथा देश के शासन में साधारण प्रजातंत्रात्मक स्वरूप के विचार बिन्दु से हर प्रकार से, जिसकी सम्भवत: हम प्रत्याभूति कर सकते हैं, न्यायपालिका का कार्यपालिका से पूर्ण पृथक्करण बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण है। मैं समझता हूं कि यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है कि न्यायपालिका, जो व्यवहार विषयक स्वातन्त्र्य का मुख्य प्रकार है, कार्यपालिका के प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रभाव से पूर्णतया पृथक् तथा स्वतंत्र रहे। जैसा कि पहले बहुधा हुआ है, उच्च न्यायिक पदाधिकारियों का समान अथवा और भी उच्चतर प्रशासी पदों पर तरक्की अथवा तबादले पर जाने की संभावना, मेरी सम्मति में, स्वयं एक ऐसा प्रलोभन है जिससे न्यायाधीशों को बचाना चाहिये। मैं समझता हूं कि विधि द्वारा न्यायाधीशों का न्यायिक पदों पर से प्रशासी पदों पर तबादला बन्द कर देना चाहिये, चाहे वह पद कितना ही उच्च तथा प्रभावशाली हो, वरना ऐसे तबादले में वे अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हो जायेंगे और कदाचित् इस आशा में कि जिनके हाथ में शक्तियां हैं, वे उपयुक्त समय पर उनकी उचित प्रशंसा करें, वे अनजाने में ऐसे ही आदर्शों पर अपना निर्णय देंगे।

मैं समझता हूं कि हमारे जैसे देश में, जो अभी प्रजातंत्रीय सरकार के ढांचे के लिये नया है जो दलाश्रित सरकार की सीमाओं के लिये नया है और जो केवल पद के प्रलोभन के लिये ही नहीं वरन् अन्य लाभों के लिये दल-व्यवस्था में भी नया है, इस बात पर बहुत अधिक जोर नहीं दिया जा सकता है कि न्यायपालिका कार्यपालिका से सर्वथा स्वतंत्र रहे और उससे किसी रूप में भी प्रभावित न रहे। यह तमाशा पहले बहुत हुआ करता था। कदाचित् यहां बहुतों को इस बात का ज्ञान है जबकि उच्च प्रशासी पदाधिकारी विधायी कार्यवाहियों में मार्ग अनुसरण करने के आदेश देने तक में वास्तविक रूप में अर्ध-सरकारी मंत्रणा देने तक में नहीं हिचकते थे। मुझे विश्वास है कि देश में अब वह स्थिति नहीं है। परन्तु ऐसे न हो कि कार्यपालिका द्वारा न्यायपालिका पर प्रभाव डालने की जरा सी भी गुंजाइश अज्ञानवश रह जाये, मैं यह सुझाव करता हूं कि ऐसी संभावना को भी दूर कर दिया जाये। अत: संविधान में यह निश्चित व्यवस्था कर देनी चाहिये कि न्यायपालिका

कार्यपालिका से या विधानमंडल से पूर्णतया पृथक् तथा स्वतंत्र होनी चाहिये। मुझे विश्वास है कि इस सरल सिद्धांत पर कोई आपत्ति नहीं होगी और सदन द्वारा यह स्वीकार कर लिया जायेगा।

***श्री के.एम. मुन्शी:** अध्यक्ष महोदय, मेरे मित्र प्रो. शाह द्वारा प्रस्तावित संशोधन के प्रति मुझे केवल कुछ ही बातें कहनी हैं। जैसा कि सदन ने देखा होगा, इस संशोधन में दो विचारधारायें मिला दी गई हैं। पहली विचारधारा न्यायपालिका शक्तियों का कार्यपालिका शक्तियों से पृथक्करण है। दूसरी विचारधारा न्यायपालिका का स्वातन्त्र्य है। इस समय यदि मैं सदन को स्मरण करा सकता हूं तो शक्तियों के पृथक्करण का सिद्धांत, जो आरम्भ में अठारहवीं शताब्दी में मोन्टेस्क्यू ने प्रस्तुत किया था, वह आधारशिला थी जिस पर अमरीका के संयुक्त राज्य के संविधान का निर्माण किया गया था। पर विगत 150 वर्षों के अनुभव ने यह सिद्ध कर दिया है कि शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत का आधुनिक राज्य में पालन नहीं किया जा सकता है। आज हम देखते हैं कि कार्यपालिका अर्ध न्यायिक रूप के अनेक न्यायाधिकरण नियुक्त करता है। हम देखते हैं कि विभिन्न प्रकार के आचरण को विनियमित करने वाली विधि के अन्तर्गत कार्यपालिका द्वारा अनेकों नियम बनाये जाते हैं। आधुनिक राज्य में कार्यपालिका विधान की तथा झगड़ों को निपटाने तक की कतिपय शक्तियों का उपभोग करती है। हम औद्योगिक न्यायालय भी देखते हैं, जो स्वयं अपने ऊपर हिस्सेदारों के अधिकारों पर निर्णय करने का अधिकार ले रही हैं दूसरी ओर हम यह देखते हैं कि कभी कभी न्यायपालिका को ऐसे कृत्य करने पड़ते है जो बहुत ही संकीर्ण विचार से प्रशासी हैं। अत: शक्तियों के पृथक्करण का सिद्धांत एक निन्दनीय सिद्धांत है। ब्रिटिश नमूने को ग्रहण करते हुये यह संविधान पूर्णतया विभिन्न सिद्धांत पर आधृत किया गया है। हमने न्यायपालिका में उतनी स्वतंत्रता निहित कर दी है, जितनी कि इंग्लैंड में प्रिवी कौंसिल को प्राप्त हैं और उससे बहुत अधिक जितनी कि अमरीका की उच्चतम न्यायालय को है, परन्तु शक्तियों के पूर्ण पृथक्करण को अस्वीकार कर दिया गया है। यह शक्तियों के पृथक्करण के सम्बन्ध में है।

न्यायपालिका की स्वतंत्रता के सम्बन्ध में, जिस पर कि मेरे मित्र प्रो. शाह ने जोर दिया है, इस अध्याय में पर्याप्त सावधानी बरती गई है कि इस संविधान के अन्तर्गत भारत में न्यायिक प्रणाली एक संयुक्त प्रणाली होनी चाहिये और जो जितनी एक आधुनिक राज्य में हो सकती है, कार्यपालिका से उतनी स्वतंत्र हो। इस अध्याय पर विचार करने में अग्रसर होने पर सदन को यह विदित हो जायेगा कि एक बार न्यायाधीश के नियुक्त हो जाने पर उसका पारिश्रमिक और भत्ता इत्यादि निश्चित बने रहते हैं। और भी यह कि उसको कुछ परिस्थितियों के अतिरिक्त अन्य प्रकार से हटाया नहीं जा सकता है, जैसे कि दोनों सदनों के दो तिहाई बहुमत से वह हटाया जा सकता है। बाद में वकालत करने से वह वंचित किया जाता है और मुझे विश्वास है कि अपनी न्यायाधीश की अवधि समाप्त होने पर वह सरकार से अपने भविष्य के लिये कोई आशा न रखेंगे। उन समस्त देशों में जिनमें इंग्लैंड का नमूना ग्रहण किया गया है, न्यायपालिका की स्वतंत्रता के लिये ये पर्याप्त प्रत्याभूतियां समझी जाती हैं। ये रक्षा-कवच हैं ही। और अधिकतर यह इस बात पर निर्भर है कि न्यायपालिका किस प्रकार का कार्य करेगी, विधानमंडल की भावना क्या है और

[श्री के.एम. मुंशी]

न्यायपालिका किस भावना से कार्य करती है। यह वह विषय है जो देश के लोकमत पर तथा उन व्यक्तियों पर निर्भर है जो संविधान को क्रियान्वित करेंगे। परन्तु जहां तक न्यायपालिका का सम्बन्ध है, वह उतनी ही स्वतंत्र है जितनी कि वह किसी अन्य देश में स्वतंत्र है और ऐसा कोई भय नहीं होना चाहिये कि प्रो. शाह के संशोधन के प्रथम भाग को स्वीकार न करने के कारण किसी प्रकार से भी न्यायपालिका पंगु अथवा क्षीण हो जायेगी।

***श्री आर.के. सिधवा:** अध्यक्ष महोदय, विगत पचास वर्षों से भी अधिक समय से कांग्रेस वचन-वद्ध है कि कार्यपालिका को न्यायपालिका से पृथक् करना चाहिये। प्रत्येक बार जब यह विषय जनता के समक्ष आया है, तो मुख्य कारण यही बताया गया है कि सिद्धान्तत: यह बुरा है। एक ही व्यक्ति अभियोक्ता तथा न्यायाधीश नहीं होना चाहिये और देश में आजकल यही हो रहा है और विगत समय में भी न्याय का खून हुआ करता था, जबकि एक ही व्यक्ति अभियोक्ता और न्यायाधीश होता था, जो अपराधी व्यक्ति के मुकदमे को करता था। मैं इसके ब्यौरे का विवरण नहीं दूंगा क्योंकि लोगों को यह भली प्रकार विदित है कि हम इन दो कृत्यों के पृथक्करण का समर्थन क्यों करते चले आ रहे थे और यह परम आवश्यक है कि इन दो कृत्यों को पूर्णतया पृथक् कर दिया जाये। पर, श्रीमान्, मैं यह कहूंगा कि यह प्रश्न गत सत्र में इसी सदन में विचार-विमर्श के लिये प्रस्तुत हुआ था और हमने लगभग तीन घंटे तक इस पर वाद-विवाद किया था। यदि आप कृपा कर राज्य की नीति के निदेशक सिद्धांतों को देखेंगे, तो उसमें एक अनुच्छेद 39-क पारित किया गया है जिसमें कहा गया है:

> ''The State shall take steps to separate the judiciary from the executive in the public services of the State.''

यह वह अनुच्छेद है जो उस सरकार के लिये, जो पद ग्रहण करेगी, निदेशक सिद्धांत के रूप में पारित किया जा चुका है और ग्रहण किया जा चुका है और वह इस संशोधन की अपेक्षा, जिसे मेरे मित्र प्रो. शाह पेश करना चाहते हैं, अधिक शक्तिशाली है। जिस विषय पर विचार-विमर्श हो चुका है और जो निश्चित किया जा चुका है और जो एक अनुच्छेद का अंग बन चुका है और यद्यपि इस विषय से सिद्धान्तत: मैं सहमत हूं, क्योंकि गत सत्र में इसी सदन में उस पर पूरा-पूरा विचार-विमर्श हो चुका था, तो मैं ऐसा कोई कारण नहीं देखता हूं कि उस विषय पर हम क्यों एक दूसरा खंड फिर रखें और वाद-पद को जटिल बनायें। मेरी सम्मति से 'निदेशक' का अर्थ है कि उसमें इस अनुच्छेद से अधिक बल है। यह हो सकता है कि कोई सरकार उस निदेशक नीति को स्वीकार न करे। इस बात के लिये, कि यदि वह इस निदेशक नीति को स्वीकार न करे, साधन विधानमंडल के हाथ में है। अत: मैं आग्रह करता हूं कि यद्यपि इस सिद्धांत को मैं स्वीकार करता हूं, पर जहां तक मुझे याद है, चूंकि इस विषय पर तीन घंटे तक खूब विचार-विमर्श हो चुका है और यह विषय अनुच्छेद का अंग बन गया है, इस प्रकार का संकल्प पारित करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

श्री पी.के. सेन (बिहार : जनरल): श्रीमान्, मेरे माननीय मित्र प्रो. शाह द्वारा पेश किये गये सिद्धांत का मैं हृदय से समर्थन करता हूं। न्यायपालिका तथा कार्यपालिका के

कृत्यों के मिलाने के प्रश्न पर, मुझे नहीं मालूम कितनी बार वाद-विवाद हो चुका है। राजा राममोहन राय के समय से न्यायपालिका और कार्यपालिका के कृत्यों को पृथक् करने का परम आवश्यक प्रश्न राष्ट्र के सम्मुख है। कदाचित मुझे तो आश्चर्य हुआ। वास्तव में मैं तो आश्चर्यचकित हो गया—जबकि मेरे माननीय मित्र श्री मुंशी ने यह कहा कि यह एक निन्दनीय सिद्धांत है कि न्यायपालिका तथा कार्यपालिका के कृत्यों को न मिलाया जाये। हां, यह प्रश्न उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के सम्बन्ध में नहीं उठता है।

***अध्यक्षः** मैं यह बात बता दूं कि यहां इस अध्याय में हमारा केवल संघ की न्यायपालिका से सम्बन्ध है, यहां हमारा सम्बन्ध अधीन न्यायपालिका अथवा किसी अन्य न्यायपालिका से नहीं है। जहां तक संघ का सम्बन्ध है, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका में परस्पर कृत्यों के मिलाने का कोई प्रश्न ही नहीं है।

***डा. पी.के. सेनः** पर श्रीमान्, मैं समझता हूं कि संशोधन तो यही है:

> ''Subject to this Constitution, the Judiciary in India shall be completely separate from and wholly independent of the Executive or the Legislature.''

यह आवश्यक नहीं कि यह संघ के न्यायमंडल के अन्तर्गत ही आता हो। मैं यह निवेदन करता हूं कि यह सिद्धांत स्वयं ऐसा है कि हमें इसे स्वीकार कर लेना चाहिये, चाहे इसके लिये उचित स्थान कहीं भी हो, जो कि विवादास्पद विषय हो सकता है, और यह संशोधन तो एक सिद्धांत का प्रतीक है। अब हमारे लिये यह निश्चित रूप से कहने का समय है कि कार्यपालिका और न्यायपालिका में पृथक्करण होना चाहिये। मैं इस बात को प्रमाणित नहीं करता हूं कि इस विशिष्ट स्थल पर होने के कारण यह प्रतीत होता है कि वह संघ के न्यायमंडल के अन्तर्गत है, पर स्थिति यह नहीं है। संशोधन में केवल यह कहा गया है कि भाग 5 के अध्याय 4 में एक नवीन अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये। एक पृथक् शीर्षक और होने दीजिये। मैं नहीं जानता हूं कि यह किस स्थल पर होना चाहिये। पर यह वास्तव में निस्सार सी बात है। मुझे पूर्ण आशा है कि जल्दबाजी में यह संशोधन अस्वीकार नहीं किया जायेगा, वरन् सदन वास्तव में इस पर यह विचार पूर्ण मत प्रकट करेगा कि इसे एक स्वीकृत सिद्धांत के रूप में मानना चाहिये। यह एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण सिद्धांत है, जिस पर अनेक विगत वर्षों से हम आग्रह करते चले आये हैं, अतः अपने संविधान में इसे रखना चाहिये। यह संघानीय न्यायपालिका और यहां तक कि उच्च न्यायालय के अधीन नहीं आता है। पर यह भी अपयश है कि लगभग भारत में सर्वत्र अधीन न्यायमंडल में इन कृत्यों की संयुक्ति है और यही उस अपकार की जड़ है, जिसके विरुद्ध हम अनेक वर्षों से शिकायत करते आये हैं। अतः मैं इस संशोधन का समर्थन करता हूं।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, जो संशोधन मेरे मित्र प्रो. शाह द्वारा इस संविधान में एक नवीन अनुच्छेद 102-क प्रविष्ट कराने का प्रयास करते हुये संशोधन पेश किया है,

[श्री एच.वी. कामत]

उसका समर्थन करने के लिये मैं खड़ा होता हूं। श्री मुंशी से न्यायपालिका तथा कार्यपालिका की शक्तियों के पृथक्करण के विरुद्ध तर्क सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ, इस बात पर विचार करते हुये कि राज्य-नीति के निदेशक सिद्धांतों में, जैसा कि श्री सिधवा ने ठीक संकेत किया, इस सदन ने एक अनुच्छेद 39-क पारित कर ही दिया है, जिसमें यह दिया गया है कि राज्य की लोक सेवाओं में न्यायपालिका को कार्यपालिका से पृथक् करने के लिये राज्य प्रयत्नशील होगा। सदन के समक्ष जिस रूप में मूल अनुच्छेद 39-क पेश किया गया था, उसमें काल की एक सीमा उल्लिखित थी अर्थात् इस संविधान के प्रारम्भ से तीन वर्ष की अवधि। बाद में काल को सीमा हटा दी गई और बिना किसी अवधि अथवा काल-सीमा के उल्लेख के, जिसके अन्तर्गत इन दो कृत्यों को पृथक् किया जा सके, अनुच्छेद 39-क पारित कर दिया गया। एक काल-सीमा के निकाल देने से देश के अनेक भागों में न्यायाधीशों और वकीलों में संदेह उत्पन्न हो गया, जिन्होंने यह सोचा कि वास्तव में इस समूचे वाद-पद को एक अनिश्चित समय के लिये दबा दिया गया। इस सदन द्वारा अनुच्छेद 39-क के स्वीकार कर लेने के बाद ही पटना उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति श्री क्लिफोर्ड मनमोहन अग्रवाल ने बिहार न्यायिक पदाधिकारी सम्मेलन का उद्घाटन करते हुये इस अनुच्छेद का उल्लेख किया था और कहा था—मैं 9 दिसम्बर के हिन्दुस्तान टाइम्स में से पढ़ रहा हूं।

''क्या यह स्पष्ट नहीं है कि यह प्रकट हो जाने पर भी, कि जो लोग दंडविधि के प्रशासन के लिये नियुक्त किये जाते हैं उन पर शक्ति रखना प्रशासन के जर्जर यंत्र को संचालित करने में सहायता देता है, सरकार उस शक्ति का परित्याग करने के लिये अनिच्छुक है, यद्यपि जिस जनता के प्रतिनिधि होने का वह दावा करती है, वह बहुत समय पहले हो जाने वाले इस सुधार की मांग करती है और यद्यपि सरकार स्वयं इस बात से पूर्णतया परिचित है कि यदि दंड-विधि का प्रशासन उन लोगों का विश्वास प्राप्त करना चाहता है, जिनकी रक्षा के लिये वह है, तो यह एक आवश्यक कदम है?''

जबकि गत नवम्बर या दिसम्बर में इस सदन में इस अनुच्छेद 39-क पर संशोधन पेश किया गया था, तो माननीय पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि भारतीय सरकार न्यायपालिका को कार्यपालिका से पृथक् करने के पूर्णतया पक्ष में है।

***अध्यक्ष:** श्री कामत, क्या मुख्य न्यायाधिपति ने इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में टिप्पणी की थी?

***श्री एच.वी. कामत:** जी हां, उस संदेह के सम्बन्ध में जो उत्पन्न हो गया था। मैं हिन्दुस्तान टाइम्स में से...

***अध्यक्ष:** क्या वह इस विशिष्ट अनुच्छेद के सम्बन्ध में है?

***श्री एच.वी. कामत:** वह संदेह के सम्बन्ध में है। क्या मैं उस पूरे के पूरे उद्धरण को पढ़ूं? उसमें कहा गया है कि अवधि तथा काल-सीमा को हटाने के प्रयास के कारण

यह अनुच्छेद अनेक लोगों के मन में सन्देह उत्पन्न करता है और ''पटना उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति ने इस संदेह के प्रति वाक्पटुता से आवाज उठाई थी। स्वर्गीय सरोजिनी देवी ने भी बिहार न्यायिक पदाधिकारियों के सम्मेलन में भाषण दिया था''। मैं फिर उसी तारीख के हिन्दुस्तान टाइम्स पत्र में से पढ़ रहा हूं।

***अध्यक्ष:** इन समस्त उल्लेखों से इस अनुच्छेद का कोई सम्बन्ध नहीं है।

***श्री एच.वी. कामत:** बिना तीन साल की समय-सीमा के अनुच्छेद 39-क का केवल में उल्लेख करता हूं और इससे अनेक लोगों के मन में सन्देह उत्पन्न हुआ। यद्यपि जैसा कि प्रधानमंत्री ने कहा था, हम जानते हैं कि भारतीय सरकार पूर्णतया पृथक्करण के पक्ष में है, फिर भी तीन साल की समय-सीमा के निकाल देने से सहमत होने के कारण बहुत से लोगों को शंका हुई अथवा उन्होंने सोचा कि इसके बारे में हमारी सद्भावना नहीं है। मेरे विचार से स्वतंत्र न्यायपालिका की महान् आवश्यकता इस तथ्य के कारण है कि सर्वप्रथम तो यहां पर एक फेडरल संघ संविधान का निर्माण कर रहे हैं, जहां केन्द्र और एककों में जो झगड़े होंगे, उनको निपटाने या तय करने के लिये एक स्वतंत्र न्यायिक प्राधिकारी आवश्यक है; और दूसरे मेरे तुच्छ विचार में यह अत्यन्त आवश्यक है कि एक प्रजातन्त्रात्मक राज्य में नागरिक की स्थिति ऐसी होनी चाहिये कि वह एक निष्पक्ष प्राधिकार के सम्मुख राज्य के विरुद्ध शिकायत कर सके। ये दो कृत्य जिनका मैंने अभी उल्लेख किया है, अर्थात् सर्वप्रथम केन्द्र और एककों में झगड़े निपटाने अथवा तय करने का न्यायपालिका का कृत्य तथा राज्य के विरुद्ध नागरिक को न्याय प्रदान करने का कृत्य, तब तक पूरे नहीं किये जा सकते जब तक कि न्यायपालिका कार्यपालिका से पृथक् न हो तथा उससे पूर्णतया स्वतंत्र न हो। अत: स्वतंत्र राष्ट्र तथा स्वतंत्र जनतंत्रात्मक राज्य के प्रसंग में, जिसका हम अपने देश में निर्माण करने जा रहे हैं, इसके पूर्व कि हम नागरिकों को मूलाधिकार प्रदान करें अथवा इसके पूर्व कि हम केन्द्र और एककों के मध्य विभिन्न कृत्यों और शक्तियों का बंटवारा करें, न्यायपालिका की उच्च प्राथमिकता हो जानी चाहिये। जिन अधिकारों को आप नागरिकों को दे रहे हैं, उनके रक्षण तथा संरक्षण के लिये यदि न्यायपालिका नहीं है तो हम अपने संविधान की पवित्रता की रक्षा किस प्रकार कर सकेंगे? इस कारण मैं कहता हूं कि श्री मुंशी के इस वक्तव्य के सुनने के लिये तैयार न था कि यह एक निन्दनीय सिद्धांत है और वर्तमान युग में इसकी कोई मान्यता नहीं है। बल्कि इसके विरुद्ध, श्रीमान्, मैं साहसपूर्वक यह कहता हूं कि वैयक्तिक स्वातन्त्र्य तथा प्रजातंत्रात्मक स्वतंत्रता पर आक्रमणों के बढ़ जाने से, जिन्हें कि हम आज समस्त संसार में देख रहे हैं, एक स्वतंत्र न्यायपालिका का स्थान इतना ऊंचा कभी नहीं था जितना कि आज है। अत: श्रीमान्, मेरे मित्र प्रो. के.टी. शाह द्वारा सदन के समक्ष प्रस्तुत किये गये संशोधन का मैं समर्थन करता हूं और सदन से निवेदन करता हूं कि इस संशोधन को स्वीकार करे।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर** (मद्रास : जनरल): प्रो. शाह द्वारा पेश किये संशोधन पर मुझे कई आपत्तियां हैं सर्वप्रथम वह इस अध्याय के विषय से संगत नहीं है, जो उच्चतम न्यायालय के निर्माण तथा कृत्यों से सम्बन्ध रखता है। कार्यपालिका तथा न्यायपालिका में परस्पर सम्बन्ध जैसा सामान्य प्रसंग इस अध्याय का विषय नहीं है। यह सत्य है कि

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

संविधान के प्रारूप में न्यायपालिका, उच्च न्यायालय, उच्चतम न्यायालय और अधीन न्यायालयों से सम्बन्धित कोई सामान्य अध्याय नहीं है। यदि ऐसा होता और यदि हम न्यायपालिका और कार्यपालिका में परस्पर सम्बन्ध की व्याख्या करते तो बात दूसरी होती। यदि इस प्रकार का कोई अनुच्छेद रखना ही है, तो संविधान के किसी अन्य भाग में उसका स्थान होना चाहिये।

दूसरी बात यह है कि इस सदन ने किसी रूप में इस सामान्य विषय पर, जबकि सदन द्वारा मूलाधिकार पर वाद-विवाद हुआ था, विचार कर ही लिया है। वर्तमान परिस्थितियों पर विचार करते हुये प्रथम कुछ वर्षों में संविधान का क्रियान्वित करना कठिन होगा, तो यह अनुभव किया गया कि क्या कार्यपालिका तथा न्यायपालिका के पृथक्करण को तुरन्त ही हाथ में ले लिया जाये। अतः यह संशोधन उस संकल्प की भावना के विरुद्ध है, जो इस सदन द्वारा निश्चित हो चुका है। यह दूसरी बात है।

तीसरी बात यह है कि इस प्रकार का सामान्य खंड प्रशासन के समस्त तंत्र को दुर्व्यवस्थित कर सकता है। मैं इसे अभी एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करता हूं।

जिस तिथि से संविधान लागू होता है, उस तिथि से कार्यपालिका तथा न्यायपालिका का पूर्ण पार्थक्य हो जाता है। यह सत्य है कि अभी भारत के विभिन्न प्रान्तों के प्रशासन के ढांचे में कार्यपालिका और न्यायपालिका में कुछ न कुछ मेल अथवा संयुक्ति है। न्यायपालिका के सम्बन्ध में तथा जिस रूप में न्यायपालिका संविधान के विभिन्न भागों पर कार्य करेगी, इस सम्बन्ध में विशिष्ट उपबंधों के रखे बिना यदि आप इस प्रकार का सामान्य अनुच्छेद रखते हैं, तो प्रशासन कार्य किस प्रकार ठीक-ठीक होगा? इस बात को छोड़ते हुये भी और भी महत्त्वपूर्ण संवैधानिक आपत्तियां इस प्रकार के अनुच्छेद पर हैं मैं तुरन्त यह कह देना चाहता हूं कि न्यायपालिका के कृत्यों को कार्यपालिका के कृत्यों से पृथक् करने से मैं पूर्णतया सहमत हूं। पर यदि आप संविधान में इस प्रकार का सामान्य अनुच्छेद अथवा संशोधन रख देंगे, तो उससे बहुत सी कठिनाई उत्पन्न होने की संभावना है। यदि हम संसार के विभिन्न भागों के प्रशासनीय संस्थाओं का केवल निरीक्षण करें, जिसमें अमरीका भी शामिल है, जहां कि कम से कम न्यायपालिका से कार्यपालिका को पृथक् करने के सिद्धांत को मान लिया गया है, तो हमको यह विदित होगा कि अनेक अर्ध न्यायिक कृत्य ऐसे हैं जिनको उन संस्थाओं में निहित कर दिया गया है, जो कार्यपालिका अथवा प्रशासनीय संस्थायें कही जाती हैं। इसके बिना साधारण रूप से प्रशासन नहीं चल सकता है। संभव है ये कृत्य इस रूप में पूर्णतया न्यायिक न हों, जिस रूप में कि उनका किसी न्यायालय द्वारा निर्वहन किया जा सकता है। परन्तु वास्तव में उन पर दलों के परस्पर अधिकारों तथा उत्तरदायित्वों का कार्य भार होता है।

मैं इस सदन के सदस्यों से यह निवेदन करूंगा कि वे संयुक्त राज्य (अमरीका) की उच्चतम न्यायालय के प्रतिवेदन का कोई भी अंक ले लें और उन अनेकों अभियोगों को लें, जो राज्यों में परस्पर आयोग कहे जाने वाले तथा अन्य अनेक अर्धन्यायिक आयोगों से, जो अमरीका के विभिन्न प्रान्तों में कार्य कर रहे हैं, आये हुये हैं। इसमें सन्देह नहीं

कि इन अभियोगों में उच्चतम न्यायालय ही अन्तिम आश्रय है। इसकी कठिनाई के अलावा भी प्रशासी निकायों में किसी प्रकार के न्यायिक कृत्यों के निहित करे बिना आधुनिक प्रशासीतंत्र का संचालन करना असंभव है। मैं यह भी कह दूं कि पृथक् करने के सम्बन्ध में किसी खंड के न होने पर भी आस्ट्रेलिया के संविधान में न्यायालय में न्यायिक शक्ति निहित करने के एक अनुच्छेद ने कठिनाई पैदा कर दी है। वहां जो पद काम में लाया गया है वह 'न्यायिक शक्तियां अमुक-अमुक में निहित होंगी'। आस्ट्रेलिया में यह प्रश्न उठा है कि क्या आयकर न्यायाधिकरण, जो अर्धन्यायिक कृत्यों का प्रयोग करते रहे हैं, निर्धारण के प्रश्नों पर भी विचार कर सकते हैं। बहुत कठिनाई के पश्चात् तथा न्यायालयों और न्यायाधिकरणों का इतिहास खोजने के पश्चात् प्रिवी कौंसिल ने इस कठिनाई को पार किया और बताया कि एक निकाय, जो न्यायिक कृत्यों को प्रयोग कर रहा है, पर न्यायिक शक्तियों का प्रयोग नहीं कर रहा है वह वस्तुतः न्यायालय नहीं हो सकता।

अतः यदि हम इस बात को रखने के लिये उत्सुक भी हों, तो इसके लिये विभिन्न विधान-मंडलों द्वारा प्रयत्न होना चाहिये। इस प्रकार के विधान को उठाने में विधानमंडलों को उन विभिन्न कृत्यों की परीक्षा करनी होगी जिनका निर्वहन, प्रशासनीय, अर्धप्रशासनीय, अर्धन्यायिक न्यायाधिकरणों द्वारा किया जाता है और फिर देखना होगा कि कुछ अर्धन्यायिक कृत्यों को प्रशासनीय निकायों में निहित किये जाने से संगत कहां तक न्यायालयों अथवा वरिष्ठ न्यायालयों पर अन्तिम आलम्बन की प्रत्याभूति की जा सकती है।

मैं समझता हूं कि इस प्रकार का एक सामान्य अनुच्छेद हमें बड़ी कठिनाई में डाल देगा। यद्यपि मैं कार्यपालिका के पक्ष का समर्थन नहीं करना चाहता हूं अथवा यह नहीं कहना चाहता हूं कि कार्यपालिका तथा न्यायपालिका में कोई पार्थक्य नहीं होना चाहिये, पर इसके लिये समस्त क्षेत्र का अनुसंधान आवश्यक है और आप इस स्थिति में होने चाहियें कि आप प्रशासनीय कार्य के समस्त क्षेत्र की परीक्षा कर सकें, जिन देशों में सिद्धांत को मान लिया गया है, उनमें जिस प्रकार से इसका प्रयोग किया गया है, उस पर ध्यान दे सकें, उनके आधुनिक काल के उदाहरण से लाभ उठा सकें और यह विचार करें कि हम उन गतों से बच सकें जिनमें वे गिर पड़े हैं। इस समस्या के सुलझाने का यही उचित मार्ग है।

अतः इन आधारों पर मैं इस संशोधन का विरोध करता हूं: पहला यह कि यह इस विशिष्ट अध्याय के विषय से संगत नहीं है: दूसरा यह कि इसमें सामान्य प्रशासन के सम्पूर्ण क्षेत्र का अनुसंधान निहित है: तीसरा यह कि यह सत्य है कि इससे समस्त प्रशासन दुर्व्यवस्थित हो जायेगा और चौथा यह कि 'पूर्णतः पृथक्' और 'पूर्णतः स्वतंत्र' शब्दों से बड़ी कठिनाई उत्पन्न होगी।

मैं प्रो. शाह के संशोधन का विरोध करता हूं।

***डा. पी.एस. देशमुखः** श्रीमान्, मुझे खेद है कि मैं स्वयं को प्रो. शाह की विचारधारा के अनुकूल नहीं पाता हूं और उनके द्वारा पेश किये गये संशोधन का समर्थन नहीं कर सकता हूं। उस ओर से दो भाषण दिये जा चुके हैं (श्री के.एम. मुंशी तथा श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर द्वारा) पर मुझे यह कहते हुए खेद है कि वे पूर्णरूप से सुनाई नहीं

[डा. पी.एस. देशमुख]

दिये, अत: यदि मैं किसी बात को इधर-उधर दुहरा दूं तो मुझे क्षमा किया जाये। वैसे तो मैं जितना संक्षेप में बोल सकता हूं बोलूंगा।

जो संशोधन प्रस्तावित किया गया है वह दो बातें चाहता है। वह न्यायपालिका से कार्यपालिका का पार्थक्य चाहता है तथा वह न्यायपालिका की स्वतंत्रता की भी व्यवस्था करना चाहता है। जहां तक उच्चतम न्यायालय का सम्बन्ध है, वह तो कार्यपालिका से पृथक् है ही, अत: पार्थक्य का कोई प्रश्न नहीं उठता है। दूसरी बात जिसे प्रो. शाह प्राप्त करना चाहते हैं वह है स्वतंत्रता। उच्चतम न्यायालय की स्वतंत्रता किस प्रकार प्राप्त की जायेगी? यदि अन्य विभिन्न देशों के संविधान पर ध्यान दें तो यह व्यवस्था कहीं भी नहीं की गई है कि किसी विशिष्ट देश की न्यायपालिका किस प्रकार स्वतंत्र होगी। न्यायाधीशों की नियुक्ति के तरीके के उचित संकलन द्वारा, इस व्यवस्था के द्वारा कि न्यायपालिका के न्यायिक कृत्यों में कार्यपालिका का कोई हस्तक्षेप न होगा, न्यायाधीशों को आसानी से न हटाये जाने देने के कारण द्वारा इत्यादि इत्यादि बातों के द्वारा न्यायपालिका के लिये अधिक स्वतंत्रता प्राप्त की जा सकती है न कि किसी प्रत्यक्ष उपबन्ध द्वारा कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश स्वतंत्र होंगे। श्री मुंशी तथा श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने जो कुछ कहा (मैं नहीं जानता हूं कि मैंने उनको ठीक-ठीक सुना भी है), उस पर ध्यान न देते हुये मैं साहसपूर्वक यह कहता हूं कि मैं तो इस बात को पूर्णतया स्वीकार करता हूं कि सदन के समक्ष जो संविधान का प्रारूप है, उसमें न्यायपालिका की स्वतंत्रता विनिहित है और उससे अधिक न आवश्यक है और न उपादेय ही है। जिस प्रकार कि हम यह कहकर कि कुछ सदस्यों को विरोधी दल बनाना चाहिये कोई विरोधी दल नहीं बना सकते हैं, उसी प्रकार यह कहकर कि वह स्वतंत्र होगी हम उसे स्वतंत्र नहीं कर सकते हैं। इसी प्रकार यह कहकर कि ''आप स्वतंत्र है'' आप स्वतंत्र न्यायपालिका नहीं बना सकते। एक दीर्घकाल से भारतीय न्यायपालिका के अपने निजी अनुभव से मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूं कि एक भारतीय न्यायाधीश को जितना होना चाहिये कदाचित् वह उससे अधिक स्वतंत्र है, अपेक्षाकृत इसके विरुद्ध होने से। यदि कोई व्यक्ति भारत की न्यायपालिका के सम्पूर्ण क्रियाकरण को देखे, तो मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूं कि बिना इस प्रकार के खंड की व्यवस्था किये, जिसके द्वारा हम उनसे यह कहें कि वे स्वतंत्र हैं और उन पर कार्यपालिका का कोई प्रभाव नहीं होगा, उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों और फेडरल न्यायालय के न्यायाधीशों ने उतनी स्वतंत्रता से कार्य किया है जितनी स्वतंत्रता से देश उनसे कार्य करने की आशा करता था। इस विचार-बिन्दु से मैं कहता हूं कि ये उपबंध पूर्णतया पर्याप्त हैं और हम पर्याप्त रूप से एक स्वतंत्र न्यायपालिका की व्यवस्था कर रहे हैं। सम्मानपूर्वक मैं श्री मुंशी से मतभेद प्रकट करना चाहूंगा यदि वे यह सोचते तथा कहते हैं कि स्वतंत्र न्यायपालिका की व्यवस्था करना संभव नहीं है। मेरे विचार में एक स्वतंत्र न्यायपालिका की व्यवस्था करना नितांत आवश्यक है, पर मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस अध्याय के उपबंध इस आशय की पूर्ति करते हैं।

मुझे एक छोटा सा सुझाव रखना है। मैं यह कह ही चुका हूं कि यह संविधान न तो संघीय है और न फेडरल: यह दोनों की खिचड़ी है। डा. अम्बेडकर 'फेडरल' शब्द को 'संघ' शब्द में परिवर्तन करने के लिये एक संशोधन प्रस्तुत करने वाले हैं। मैं नहीं

समझता हूं कि यह संशोधन बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण है। पर जब तक इस संविधान में फेडरेशन का कोई भी अंश बाकी है मैं डा. अम्बेडकर से इस महत्त्वपूर्ण विषय के लिये यह निवेदन करूंगा कि इसको किसी भाग में शामिल करने और केवल अध्याय के रूप में रखने की अपेक्षा संविधान में इसके लिये एक स्वतंत्र भाग बनायें। एक संविधान जो फेडरल है उसके तीन प्रमुख तत्व, विधान-मंडल, कार्यपालिका और न्यायपालिका हैं। जहां तक गौरव का प्रश्न है न्यायपालिका अन्य दों से कम नहीं है और इसलिये उसके लिये एक अलग भाग होना चाहिये। उसको अध्याय 4 के आश्रित नहीं करना चाहिये वरन् उसके लिये एक अलग भाग होना चाहिये।

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** श्रीमान्, मैं हृदय से इस संशोधन के सिद्धांत का समर्थन करता हूं जो पेश किया गया है। उसको इस स्थान में रखने के औचित्य के सम्बन्ध में तथा उसकी सही पदावली के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा जा चुका है। मैं जिस बात पर जोर देना चाहता हूं, वह कार्यपालिका से न्यायपालिका को पृथक् करने तथा न्यायपालिका के स्वातंत्र्य के पीछे सिद्धांत है। उसे कहां प्रविष्ट किया जाये तथा उसकी ठीक-ठीक पदावली क्या हो, ये तो बाद में विचार करने के विषय हैं। वास्तव में इस महत्त्वपूर्ण वाद-पद पर विचार-विमर्श तथा निर्णय करने के लिये इन दो विषयों को पूर्णतया पृथक् रखना बहुत वांछनीय है। यदि हम इस सिद्धांत को पसन्द नहीं करते हैं तो हमें यह स्पष्ट कह देना चाहिये, पर यदि हम उसे पसन्द करते हैं तो उपयुक्त स्थान में उसको रखना अथवा उसकी सही-सही पदावली ऐसे विषय हैं जिनकी इस सदन में व्यवस्था की जा सकती है।

न्यायपालिका की स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिये 50 वर्ष से भी अधिक समय तक आन्दोलन करने के पश्चात् सदन में यह सुनकर आश्चर्य होता है कि न्यायपालिका की स्वतंत्रता अब वांछनीय नहीं है। किसी न किसी रूप में यहां ये सुझाव रखे गये हैं कि यह समय उपयुक्त नहीं है, ये देश इस समय न्यायपालिका तथा कार्यपालिका को पृथक् करने के परीक्षण के अनुकूल नहीं हैं तथा न्यायपालिका की स्वतंत्रता अब कोई उत्सुक्ता की वस्तु नहीं है। हम सदियों से गुलामी में रहे हैं और मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि अभी तक हम गुलामी की भावना से मुक्त नहीं हुये हैं और इसी कारण हम स्वतंत्रता प्राप्त कर लेने पर भी न्यायपालिका को कार्यपालिका की इच्छाओं तथा तरंगों के अधीन रखना चाहते हैं। कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग के मंचों पर से तथा समाचार पत्रों में भी और अन्यत्र सब स्थलों पर यही पुकार थी कि न्यायपालिका को कार्यपालिका से पृथक् तथा स्वतंत्र कर दिया जाये।

***मि. तजम्मुल हुसैनः** महासभा के क्या विचार थे?

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** मुझे विश्वास है कि उन्होंने भी इस सिद्धांत का समर्थन किया। आज भी इस सिद्धांत का कोई विरोध नहीं करता है सिवाय उनके जिनको अब शक्ति प्राप्त है और जो इसके लिये अब तक सब से अधिक चिल्लाते थे। शक्ति मिल जाने पर वे अब उसे छोड़ना नहीं चाहते हैं और न्यायपालिका को कार्यपालिका से पृथक् तथा स्वतंत्र करना नहीं चाहते हैं। वाद-विवाद को सुनकर मेरे मन में ये विचार उत्पन्न हुये हैं।

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

कार्यपालिका और न्यायपालिका के कृत्यों के संयुक्त होने का विषाक्त प्रभाव निन्दनीय है। ऐसे उदाहरण मिले हैं जिनमें सरकार या प्रधानमंत्री ने मंडल महतक को तार दिया है कि किसी खास मुकदमे का किसी खास रूप में फैसला किया जाये अथवा निपटाया जाये। उच्च न्यायालय की सूचना में भी ये बातें आ गई हैं। अभी कुछ वर्ष पूर्व एक ऐसा ही मामला कलकत्ते में हुआ और उसकी अनेक रूपों में व्याख्या की गई। आज भी यही हो रहा है। यह एक आश्चर्यजनक घटना है कि इस स्वतंत्रता के दिनों में भी ऐसी बातें हो सकती हैं। यह सत्य है कि महतक मंडल को परोक्ष रूप से ऊपर से दबाव डालकर नियंत्रित किया जाता है। मैं यह निवेदन करता हूं कि सदन के एक बड़े ही प्रतिष्ठित तथा विख्यात वकील श्री मुंशी के तर्कों पर पर्याप्त विचार की आवश्यकता है। श्री मुंशी का यह सुझाव प्रतीत होता है कि अभी न्यायपालिका का पार्थक्य तथा स्वातंत्र्य व्यवहार्य नहीं है और यदि मैं सम्मानपूर्वक कह सकता हूं, तो यह कहूंगा कि जो तर्क उन्होंने प्रस्तुत किये हैं वे कुछ अप्रत्याशित हैं। उन्होंने यह संकेत किया कि हमने नियम-निर्माण की शक्तियां ले ली हैं। औद्योगिक न्यायालय तथा अन्य संस्थायें हैं, जहां सरकार को निर्णय करना होगा। पर मैं निवेदन करूंगा कि नियम-निर्माण की शक्ति का न्यायपालिका और कार्यपालिका के पार्थक्य से कोई सम्बन्ध नहीं है। आप जितनी शक्तियां चाहते हैं ले लीजिये। एक प्रजातंत्रात्मक सदन आप को उतनी ही शक्तियां देगा जितनी की आवश्यकता है। आप जो विधि चाहते हैं पारित कर सकते हैं। न्यायपालिका के स्वातन्त्र्य से यही आशय है कि जो नियम आप बनाते हैं, न्यायालय को उन नियमों के अन्तर्गत जो शक्ति आप उसे देते हैं, उसका प्रयोग कार्यपालिका के हस्तक्षेप के बिना करने देना चाहिये अर्थात् जबकि महतक न्यायिक कृत्यों का प्रयोग करता है, उसके ऊपर किसी का प्रभाव नहीं होना चाहिये। बुरी से बुरी बात वह यह कर सकता है कि वह लोगों का सच्चा न्याय नहीं करे। यदि कोई ऐसी बात है जो जनता के हृदय को प्रफुल्लित कर सकती है और हमारी स्वतंत्रता को ठोस रूप दे सकती है, तो वह न्यायपालिका में विश्वास है। जिस समय आप किसी व्यक्ति के हृदय में यह विचार उत्पन्न होने देते हैं कि न्यायपालिका में उसका विश्वास नहीं है, सरकार की स्थिरता जर्जरित हो जायेगी। मैं निवेदन करता हूं कि इस विचार-बिन्दु से न्यायपालिका की स्वतंत्रता की प्रत्याभूति होनी चाहिये। यह नहीं है कि इसकी मांग अवसर से पूर्व की जा रही हो। यह एक ऐसा सुधार है जिसकी हम बहुत दिनों से मांग कर रहे हैं। आज इस सुधार के विरुद्ध तर्क क्यों है? यह वह तर्क है जिसे ब्रिटिश सरकार पचास वर्षों से अधिक समय से देती चली आई थी। आज भी हम उनके तर्कों को दुहरा रहे हैं। मैं निवेदन करता हूं कि बिना किसी प्रतिबंध तथा कपट के यहां अभी इस सिद्धांत को स्वीकार कर लेना चाहिये। मैं निवेदन करता हूं कि नियम-निर्माण की शक्ति और अनेक विषयों में राज्य द्वारा हस्तक्षेप करने की आवश्यकता वास्तव में इस विषय की तह तक नहीं पहुंच पायेंगी। न्यायपालिका फिर भी इनसे स्वतंत्र रह सकती है। कार्यपालिका को नियम-निर्माण करने की शक्ति होनी चाहिये। परन्तु संकीर्ण सीमाओं में दी हुई शक्ति का स्वतंत्र प्रयोग न्यायालय को करने दीजिये। श्रीमान्, सदन के एक प्रसिद्ध सदस्य ने, जिसे अमूल्य न्यायिक अनुभव है, यह बताया है कि यह आन्दोलन सौ वर्ष से भी अधिक समय से अर्थात् राजा राममोहन राय के समय से है। वास्तव में हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन के मंच का यह बहुत ही सुदृढ़ आधार रहा है। मेरे कहने का यह आशय है कि यदि न्यायपालिका

को कार्यपालिका के प्रभाव से पृथक नहीं किया जायेगा, तो नैतिक भ्रष्टाचार हो जायेगा। न्यायपालिका में जनता का विश्वास जर्जरित हो जायेगा।

श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने, जो एक विख्यात वकील और स्मृतिज्ञ हैं तथा एक महान् देशभक्त हैं, हमारे सामने ये विचार प्रकट किये हैं कि वे इस सिद्धांत को स्वीकार करते हैं, पर ये कहते हैं कि इसके लिये यह समय नहीं है। वे कहते हैं कि वर्तमान समय में यह नहीं हो सकता है। मैं सदन से इस बात पर विचार करने के लिये आग्रह करता हूं कि क्या हम नौकरशाही ब्रिटिश सरकार के इस सुधार को तुरन्त स्वीकार करने से इन्कार करने के तर्कों को दुहराते रहें। श्रीमान्, मैं काफी कह चुका हूं। मैं वाद-विवाद को बढ़ाना नहीं चाहता हूं। मैं केवल यही चाहता हूं कि बिना किसी कपट के इस सिद्धांत को तुरन्त स्वीकार किया जाये।

***अध्यक्ष:** अब आठ बज चुके हैं। मैं समझता हूं कि विचार-विमर्श बन्द कर देना अच्छा है।

श्री बृजेश्वर प्रसाद: (बिहार : जनरल): क्या इस प्रस्ताव पर बोलने के लिये मैं सदन का एक मिनट ले सकता हूं?

***अध्यक्ष:** मैं समझता हूं कि सदन अब और भाषण सुनने के लिये इच्छुक नहीं है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं नहीं समझता हूं कि कोई उत्तर आवश्यक है। यदि मैं कह सकता हूं, तो यह कहूंगा कि कदाचित् यह दुर्भाग्य की बात है कि प्रो. शाह ने यह संशोधन पेश किया है। जब हम राज्य की नीति के निदेशक सिद्धान्तों पर विचार-विमर्श कर रहे थे, उस समय इस विषय पर पूर्ण विवरण सहित वाद-विवाद हुआ था। अत: मैं नहीं समझ पाता हूं कि इस विषय को फिर क्यों उठाया गया और इस पर वाद-विवाद क्यों हुआ? अनुच्छेद 39-क में यह विषय लगभग समाप्त कर दिया था।

***अध्यक्ष:** अब मैं इस संशोधन पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है:

> ''कि भाग 5 अध्याय 4 में निम्न नवीन अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये:
>
> '102-क इस संविधान के अधीन भारत में न्यायपालिका कार्यपालिका अथवा विधानमंडल से पूर्णतया पृथक् तथा सर्वथा स्वतंत्र होगी।' ''

प्रस्ताव अस्वीकार किया गया।

तत्पश्चात् सभा मंगलवार तारीख 24 मई सन् 1949 ई. के आठ बजे तक स्थगित हुई।